स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा–साहित्य में दलित चेतना का बदलता स्वरूप (1990–2012)

शोध-सारांश

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच. डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत
हिन्दी
(कला संकाय)

शोधार्थी
ललिता कुमारी मीणा

शोध–पर्यवेक्षिका
डॉ. मुरलिया शर्मा
भूतपूर्व उपाचार्य,
राजकीय कन्या महाविद्यालय, बांरा (राज.)

हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा,
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2017

प्रथम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी 'कथा-साहित्य' में दलित चेतना की चिन्तनगत पृष्ठभूमि

अंग्रेजों के शासन काल में जनजागरण और सामाजिक-उत्थान की जो लहर चली उसमें अनेक समाज सुधारकों के साथ राजनैतिक पार्टियों ने भी दलित शोषित मुक्ति योजना को कार्यस्वरूप दिया। इस समय समाज के साधारणतः कूपमंडूक समाज के सामने ऐसे परिवर्तनकारी लक्ष्य रखे गये जो उस समय के साधारणतः कूपमंडूक समाज के लिए अविश्वसनीय और अकरणीय थे, जैसे—एक शूद्र और सवर्ण समाज में बराबरी का दर्जा कैसे पा सकता है? शूद्र और ब्राह्मण को एक ही दर्जे के अधिकार कैसे दिये जा सकते हैं? शिक्षा प्राप्त शूद्र एक बड़ा अधिकारी बनकर सवर्णों के बीच समान की कुर्सी पर बैठ सकता है—

"समाज ने इसे देखा सहा और इसे औचित्यपूर्ण मानने के लिए बाध्य हुआ। यह परिवर्तनकारी परम्परा चली और इस बात को थोड़े आन्तरिक भाव छोड़कर सहज रूप में लिया जाने लगा।"[1] जागरूक नेताओं के प्रयास से सरकारी आधार पर कानून के रूप में दलित-मुक्ति को आगे बढ़ाने का अवसर मिला।

---

1. दलित साहित्य : एक चिन्तन — डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. 100.

दलितेतर जनों ने दलित साहित्य को सराहनीय, सम्माननीय और क्रान्तिकारी प्रयत्न कहा है। प्रबुद्ध दलित वर्ग भी चाहता है कि समाज की वर्ण व्यवस्था जो एक स्वार्थ जाति से नहीं कर्म से पहचाना जाये। जो भी व्यक्ति सूरज बनकर चमकता है उसे सिर उठाकर नमस्कार किया जाता है, भले ही वह जाति से दलित समाज का हो।

प्रबुद्ध अदलित वर्ग कहता है, यह सच है कि शंबूक जैसे दलित पात्र के साथ अन्याय किया गया लेकिन ये तो हजारों वर्षों पहले की घटनाएँ हैं, जिन्हें आज बार-बार दोहरा कर आक्रोश प्रकट किया जा रहा है। इन घटनाओं पर आक्रोश प्रकट करने की आवश्यकता तो है लेकिन सिर्फ ऐसा ही किया जाता रहे, यह तो उचित नहीं। आज समय बदल गया है, परिवर्तन को समाज ने स्वीकार किया है, फिर हिन्दू धर्म की आस्था को बार-बार कोड़ों से क्यों पीटा जा रहा है और इसी प्रयास को दलित साहित्य का नाम दिया जा रहा है।"[2]

दलित चेतना

चेतना का शाब्दिक अर्थ है, जगाना, जागृत होना, बोध होना, होश में आना, ज्ञान होना, समझ आना। ज्ञानात्मक मनोवृत्ति अर्थात् कुछ भी ऐसा जिसके बारे में पहले ज्ञान नहीं था या ज्ञान था तो भी उसके प्रति जागरूकता नहीं थी उसके ज्ञात हो जाने पर कार्य-कारण की शृंखला का जुड़ना चेतना है और इस चेतना होने के पश्चात् होने वाली प्रतिक्रिया चेतना का घोतक है। कुल मिलाकर चेतना स्वयं को और अपने आस-पास के वातावरण को समझने तथा उसके कारण और परिणामों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। इसी दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत होने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दमन को पहचान कर उसके विरुद्ध आवाज बुलन्द करना अर्थात् उस यथास्थितिवादी व्यवस्था को आदर्श

---

2. हिन्दी साहित्य : दशा और दिशा — माताप्रसाद, पृ. 101-102.

मानने से इंकार करना जो मानव के एक बड़े समूह के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विकास के लिए सभी मार्ग जन्म से ही बन्द कर देती है।

यहाँ पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दमन के स्वरूप से भी स्पष्ट कर देना जरूरी होगा। सवर्णों द्वारा अवर्णों का प्रत्यक्ष शोषण, उत्पीड़न, बेगार कराना इत्यादि प्रत्यक्ष दमन है, किन्तु इससे भी अधिक भयंकर एवं कारगर है। अप्रत्यक्ष दमन जिसके अन्तर्गत धार्मिक संगठन कोई हथियार या फौज का इस्तेमाल नहीं करता बल्कि वह सत्ता–वर्ग से मिलकर अपने सम्मिलित स्वार्थों की सिद्धि हेतु तथा अवर्णों पर नियंत्रण हेतु ऐसी मानसिकता व संस्कारों का निर्माण करते हैं जिन्हें नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता तथा सामाजिक मूल्यों के साथ इस प्रकार मिला दिया जाता है कि उन संस्कारों की वास्तविकता भंयकरता को निम्नवर्ग कभी पहचान भी नहीं पाता है और अवचेतन स्तर पर वे संस्कार उसके मन में गहरे बैठ जाते हैं जिसके विषय में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा है—"हमारी परम्परा ने सवर्णों की ही तरह उनके (दलित) मन में भी समाज व्यवस्था की 'हाइरारकी' को अच्छी तरह पचा दिया था। जैसे सवर्ण उसे सहज और नैसर्गिक मानते थे वैसे ही शायद दलित भी मानते हैं, यानि कि यह भाव कि कहीं कुछ गड़बड़ नहीं है। खुदा सही सलामत है।"[3]

मैनेजर पाण्डे के अनुसार—"जिस साहित्य में दलितों की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आकांक्षा के अनुरूप समाज के परिवर्तन की माँग और जरूरत की अभिव्यक्ति होगी, उसी को दलित चेतना का साहित्य कहेंगे।"[4]

---

3. कल के लिए (दिसम्बर, 1998) साक्षात्कार दलित साहित्य विशेषांक, 1998
4. अनुभै सांचा, मैनेजर पाण्डे, 'केवल राख ही जानती है, जलने का अनुभव' लेख– पूर्वोदय प्रकाशन, 2002

दलित चेतना एवं प्रगति का मुख्य आधार डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षा को माना है। शिक्षा ही व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती है और जीवन संघर्ष में उसे मजबूती प्रदान करती है। यदि बाबासाहेब ने उच्च शिक्षा ग्रहण नहीं की होती तो वे दलितों की इतनी लम्बी और कठिन लड़ाई नहीं लड़ सकते थे और न ही उनके अधिकारों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करवा सकते थे। दलितों के लिए शिक्षा का महत्त्व है इसे सहजता से समझा जा सकता है।

शिक्षा से आई चेतना के परिणामस्वरूप दलितों ने अपना परम्परागत व्यवसाय मैला उठाने, मल-मूत्र साफ करने, पशुओं की खाल निकालने, चमड़ा रंगने और गंदगी खाने फैलाने वाले सूअर जैसे व्यवसायों को छोड़कर सम्मानजनक समझे जाने वाले दूसरे कार्यों को अपनाने के लिए सचेत और सक्रिय हुए। राज वाल्मीकि की कहानी 'मैला मुक्ति' के माध्यम से दलितों की सदियों से मैला ढोने की प्रथा को छोड़कर 'चन्दरबती' भैंस खरीदती है और दूध बेचने जैसा सम्मानजनक काम-धन्धा शुरू करती है। उसने चारे के सने हाथों को धोते हुए ठाकुर साहब को जवाब दिया—

"मैंने झाड़ू छोड़ दी ठाकुरसाहब। टोकरी और पंजे मैंने नाले में बहा दिए।" इस पर ठाकुरसाहब सकते में आ गए, और कहा "चन्दरबती आसमान पर मत थूके। मैला नहीं ढोएगी तो खाएगी क्या? बाल-बच्चों को क्या भूखा मारेगी? तेरा आदमी तो कुछ कमाता नहीं।"

"ठाकुरसाहब न तो मैं भूखी मरूँगी और न मेरे बच्चे। अब मैं इज्जत की जिन्दगी जीऊँगी। अब मैंने दो दुधारू भैंसे खरीद ली हैं। अब मैं दूध बेचने का धन्धा करूँगी। सामाजिक कार्यकर्त्ता राजकुमार और सीमा ने मुझे सरकार से ऋण दिलवाकर भैंसे खरीदवाई है।"

इस तरह "दलित-मुक्ति' कहानी की 'चन्दरवती' ने अपने परम्परागत घृणित और उपेक्षा भरे व्यवसायों को त्यागकर मुक्ति का आगाज कर दिया है और सम्मानपूर्वक जीवन जीने की घोषणा कर दी है।"[5]

ओम प्रकाश वाल्मीकि की कविता 'बस्स! बहुत हो चुका' में सफाई के परम्परागत घृणित काम से मुक्ति की संघर्ष के साथ दलित चेतना की दस्तक इस प्रकार है—

"झाड़ू थामे हाथों की सरसराहट
साफ सुनायी पड़ती है भीड़ के बीच
बियाबान जंगल में सनसनाती हवा की तरह
गहरी पथरीली नदी में
असंख्य मूक पीड़ाएँ
कसमसा रही हैं
मुखर होने के लिए
रोष से भरी हुई
बस्स,
बहुत हो चुका चुप रहना
निरर्थक पड़े पत्थर
अब काम आयेंगे
संतप्त जनों के॥"[6]

---

5. युद्धरत् आम आदमी विशेषांक मल-मूत्र ढोता भारत, पृ. 76, पूर्णांक-101, विशेषांक-2009
6. बस्स! बहुत हो चुका, ओम प्रकाश वाल्मीकि, (युद्धरत आम आदमी) विशेषांक- मल-मूत्र ढोता भारत, पृ. सं. -123 पूर्णांक-101, विशेषांक 2009

दलित कथाकार रूपनारायण सोनकार की कहानी 'बदलाव' में पढ़े-लिखे दलित युवा आकाश, जो लखनऊ विश्वविद्यालय से बी.ए. पास है। वह अपनी माँ को मैला साफ करने के लिए मना करता है तथा घिनौना और घृणित काम करने से रोकता है तब माँ कहती है—

"घर का खर्च कैसे चलेगा? हमारे पास कोई खेती भी नहीं है। तुम्हारे पिता और तुम कोई नौकरी भी नहीं करते हो।"

इस सवाल का जवाब आकाश इस तरह से देता है कि—"अन्य दलित परिवारों के लोगों के पास भी न कोई खेती है और न कोई नौकरी है। वे लोग कैसे जीते हैं? वे लोग यह घिनौना कार्य नहीं करते। हम लोग भी उन्हीं की तरह मेहनत मजदूरी करेंगे। मैं ट्यूशन पढ़ाऊँगा, मैं कम्प्यूटर चलाना जानता हूँ। कम्प्यूटर की ट्रैनिंग ली है। मैं घर का खर्च उठाऊँगा। पिताजी मजदूरी करेंगे, हम लोग सूअर, बकरी, भैंस, गाय पालकर गुजर-बसर करेंगे, लेकिन यह कार्य नहीं करेंगे।"

"माँ पहले सभी चमार मरे हुए जानवरों को उठाया करते थे। पढ़े-लिखे चमार भाइयों ने अपने घरवालों से मरे जानवरों को उठाने से मना करवा दिया। उन्होंने इस प्रथा को तोड़ दिया।"[7]

इस तरह से दलित शिक्षित होने के बाद अपना खानदानी पेशा को छोड़कर बाकी अन्य किसी भी तरह के कार्य करने के लिए तैयार है। चाहे वह सूअर पालने, बकरी पालने, या गाय/भैंस पालने का हो। पढ़े-लिखे युवक अपने माँ-बाप को नई चेतना जो उन्हें डॉ. अम्बेडकर से मिली उसे तार्किक रूप से अपने माँ-बाप को समझाकर छोड़ने के साथ इन प्रथाओं को गैर-दलितों द्वारा भी अपनाए जाने की

---

7. रूपनारायण सोनकर — कहानी बदलाव, पृ. 44, युद्धरत् आम आदमी विशेषांक, 2009

वकालत करते हैं। चाहे वह मरे हुए पशुओं को उठाने की हो या घर का टॉयलेट साफ करने की उन्हें घर के टॉयलेट और मन्दिर के अन्दर स्थापित शिवलिंग में समानता दिखाई देती है।

टॉयलेट साफ करने से पूरा घर साफ रहता है, लेकिन शिवलिंग, की पूजा करने से अन्धविश्वास को बढ़ावा मिलता है। एक तरह से कहें तो समय की बर्बादी भी होती है। यह बात भारत के लोगों को समझाने के साथ दूसरों पर निर्भर होने की आदत को छोड़ने की बात करते हैं।

दलित चेतना विविध आयामी है। दलित चेतना का सबसे पहला आयाम है, दलितों द्वारा अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट होना। ऐसा साहित्य और प्रयास दलित चेतना के प्रथम आयाम में देखा जाएगा। वो यह कि दलित वर्ग में अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति जागरूकता व असन्तोष का भाव जागृत है।

शिक्षा ने नई चेतना दी और चेतना से उन्होंने खानदानी पेशा छोड़कर अन्य विकल्पों की ओर रूख करना शुरू कर दिया है। इस प्रकार हम दलित कहानी लेखन परम्परा में 'चन्दरबती' हो या 'आकाश' जैसे पात्रों में अपनी वर्तमान स्थिति से परिचित होकर उसके विकल्प के रूप में दूसरे व्यवसायों की ओर रुख किया है।

महात्मा फूले ने भारतीय समाज के बहुत बड़े दलित समाज को शिक्षा से किसी प्रकार वंचित रखा। उस ऐतिहासिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सच्चाई को भी समझा और अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया। महात्मा फूले ने 'तृतीय रत्न' नाटक में विदूषक के माध्यम से कहलवाते हैं कि ब्राह्मण जिस ईश्वर से दलितों को दर्शन और साक्षात्कार करवाने की चर्चा करते हैं, उसके लिए महात्मा फूले ने इस

नाटक विदुषक से कहलवाया है—"सच बात तो यह है कि जिस ईश्वर का साक्षात्कार इन ब्राह्मण पंडों को नहीं हुआ उसका वे शूद्रों को कहाँ से करवाएँगे।"[8]

'21वीं सदी के प्रथम दशक के हिन्दी कथा-साहित्य में दलित चेतना' विषय अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज 21वीं सदी में भी जहाँ समानता के अधिकार की गुहार लगायी जाती है वहीं प्रत्यक्षता यह देखने को मिलता है कि हमारे समाज के अतिरक्त निचले तबके के लोगों पर शोषण और अत्याचार का सिलसिला अभी भी जारी है।

दलित साहित्य की भावभूमि पर जागरण प्रयास पिछली कई सदियों से चल रहा है, जिसमें कबीर, नानक, रैदास जैसे सन्तों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(क) दलित साहित्य की व्युत्पत्ति

हिन्दी साहित्य में 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई अस्मिताओं का उदय हुआ। इस उदय की कसमसाहट कई वर्षों पहले साहित्य के माध्यम से हम जानते हैं, लेकिन जहाँ तक है 'दलित-अस्मिता' की शुरुआत मध्यकालीन भक्तिकाव्य में दिखाई देती है। लेकिन भक्ति काव्य में दलित शब्द का अर्थ और उत्पत्ति के सम्बन्ध में संत कवियों के विचार आज के समय से भिन्न थे। आज 21वीं सदी में दलित साहित्य में दलित की अलग-अलग परिभाषाओं से हम परिचित होते हैं। सभी दलित विद्धानों ने दलित शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है जो दलित लेखकों द्वारा की गई परिभाषा से जुदा है। दलित शब्द का अर्थ दलितों के अनुसार दलित वह व्यक्ति है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक तौर पर समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ा है जिसका गैर-दलितों ने दलन, शोषण और उत्पीड़न किया है।

---

8. महात्मा ज्योतिबा फूले रचनावली खण्ड संख्या-1, एल. जी. में 'विभलकीर्ति' पृ. 47

जबकि गैर दलित लेखकों का मानना है कि दलित वह व्यक्ति है, जिसका शोषण किया जाता है।

'दलित' शब्द पर विद्वानों में मतभेद है। दलित साहित्य में 'दलित' शब्द को विशेष अर्थ में प्रयोग किया गया है। विभिन्न शब्दकोशों में 'दलित' शब्द का अलग-अलग क्या अर्थ बताया गया है। इसलिए सर्वप्रथम हम 'दलित' शब्द की व्युत्पत्तिपरक अर्थ को देखते हैं। विभिन्न शब्दकोशों में 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है, उनमें से कुछ इस प्रकार है—

दलित शब्द आधुनिक है, लेकिन दलितपन प्राचीन है। इस शब्द की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। दलित शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु के दल से मानी गयी है, जिसका अर्थ तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना है।

डॉ. नगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक में प्राकृत शब्दकोश से दल के निम्न अर्थ उद्धृत किये हैं—

दल (अक.) - विकसना, फटना, खण्डित होना।

दल् (सक.) - चूर्ण करना, टुकड़े करना।

दल् (नपु.) - सैन्य, लश्कर, पत्र, पत्ती।[9]

वामन शिवराम आप्टे ने 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है—

दलितः (भू.क.कृ.) 1. टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ।

2. खुला हुआ, फैलाया हुआ।[10]

---

9. सिंह, डॉ. नरेन्द्र, 1993 दलितों के रूपान्तरण की प्रक्रिया, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लि. नई दिल्ली, पृ. 7
10. संस्कृत-हिन्दी कोश — वामन शिवराम आप्टे, पृ. 45

माताप्रसाद ने संस्कृत शब्दकोश से 'दलित' के निम्न अर्थ उद्धृत किये हैं—

दलित = दल + त = टूटा हुआ, कटा हुआ, फैला हुआ।

दल = चूर-चूर करना, फाड़ देना।

दलित = दला गया, मर्दित, पीसा गया।[11]

डॉ. रामस्वरूप रसिकेश के अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ है—

दलित : वि. (सं.)

1. खण्डित, चूर्णित, मर्दित, शकलीकृत।

2. अस्पृश्य, अंत्यज।

3. नाशित, ध्वंसित।

(सं.पु.)—अस्पृश्यः, नीचः, अंत्यजः, हरिजनः।[12]

संस्कृत शब्दकोशों की तरह हिन्दी शब्दकोशों में भी 'दलित' शब्द के विभिन्न अर्थ दिए गए है, जो कि कुछ इस प्रकार है—

आचार्य रामचन्द्र वर्मा के अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ—

दलित : वि. (सं.) (स्त्री दलिता)

1. मसला, रौंदा या कुचला हुआ।

2. नष्ट किया हुआ।

3. दरिद्र और पीड़ित।[13]

---

11. माताप्रसाद — उत्तर प्रदेश में दलित जातियों का दस्तावेज, किताबघर, 1992, नई दिल्ली, पृ. 12
12. आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश — डॉ. रामस्वरूप रसिकेश, पृ. 251
13. लोक भारती प्रमाणित हिन्दी शब्दकोश — आचार्य रामचन्द्र वर्मा, पृ. 420

अंग्रेजी में इसका अर्थ निम्न प्रकार है—

दलित = टू बर्स्ट, ओपन स्लिपर, क्लेव, क्रेक।

दलित = डिप्रेस्ड, डिप्रेशन क्लास, डाउनट्रोडन।[14]

डॉ. नगेन्द्र नाथ बसु के अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार है—

दलित (सं.क्रि) दलमस्त जातं दल तारकादित्वादितच्।

1. प्रस्फुटित प्रफुल्ल।
2. खण्डित, टुकड़ा किया हुआ।
3. विदीर्ण, रौंदा हुआ, कुचला हुआ।
4. विनष्ट किया हुआ आदि।[15]

नवल जी के अनुसार—दलित [वि.] (सं.) [स्त्री. दलिता]

1. मसला, रौंदा या कुचला हुआ (2) नष्ट किया हुआ।

दलित वर्ग [संज्ञा पु.] (सं.) समाज का वह वर्ग जो सबसे नीचा माना गया हो अथवा दुःखी हो और जिसे उच्च वर्ण के लोग उठने न देते हो। डिस्प्रेस्ड-क्लास।[16]

डॉ. हरदेव बाहरी ने अपने शब्दकोश में 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार लिखा है—

दलित : सं. (वि.) 1. कुचला हुआ, दबाया हुआ (जैसे दलित वर्ग)
2. नष्ट किया हुआ। (जैसे दलित जाति) [17]

---

14. दास, भगवान, मैसी, जेम्स, सं. 1995 दलित सोलिडेरिटी आईएसपीसी को, दिल्ली, पृ. 9
15. हिन्दी-विश्वकोश (दसवाँ भाग) — डॉ. नगेन्द्र नाथ बसु, पृ. 425
16. नालन्दा विशाल शब्द सागर — श्री नवल जी, पृ. 568
17. हिन्दी शब्दकोश — डॉ. हरदेव बाहरी, पृ. 368

इस प्रकार 'दलित' शब्द के विभिन्न शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ मिलते हैं, लेकिन उनकी व्यंजना लगभग एक है। दलित वर्ग इसी दलित शब्द से जुड़ा हुआ है। दलित समाज के उस वर्ग को कहा जाता है, जिसका उच्च वर्ग के लोगों ने दलन किया, दबाकर रखा और कभी उठने नहीं दिया।

दलित शब्द का सामान्य अर्थ है, जिसे कुचला, मसला गया हो। जैसा कि डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने कहा है कि—

"दलित शब्द का मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, विनिष्ट किया गया है। अतः सामान्यतः दलित वह व्यक्ति समूह है, जिसे किसी भी आधार पर (धर्म, अर्थ, लिंग, जाति, वर्ण) शोषित व पीड़ित किया जाता है।"[18]

दलित शब्द की परिभाषा

हिन्दी में जब से दलित साहित्य का आगमन हुआ है, तब से बार-बार यह प्रश्न उठाया जा रहा है कि दलित कौन है? और किसे दलित कहा जाये? दलित की परिभाषा को लेकर विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न है। सभी ने अपने-अपने ढंग से दलित को परिभाषित करने की कोशिश की है।

हिन्दी-साहित्यकोश के अनुसार

"यह समाज का वह निम्नतम वर्ग है, जिसकी विशिष्ट संज्ञा आर्थिक व्यवस्थाओं के अनुरूप होती है। उदाहरणार्थ—दास प्रथा में दास, सामंतवादी व्यवस्था में किसान, पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर समाज का दलित वर्ग होता है।"[19]

---

18. संक्षिप्त शब्द सागर — डॉ. रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारणी सभा काशी, पृ. 468
19. हिन्दी-साहित्यकोश — संपादक धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 284

मानक हिन्दी–हिन्दी शब्दकोश के अनुसार

"समाज का वह वर्ग जो सबसे नीचा माना गया हो या दुःखी और दरिद्र हो और उच्च वर्ग के लोग उठने न देते हों, जैसे भारत की छोटी या अछूत मानी जाने वाली जातियों का वर्ग (डिप्रेस्ड क्लास)।"[20]

दलित कौन है?

'दलित' वह व्यक्ति है, जो विशिष्ट सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है, जिसके जीने के अधिकारों को छीना गया है। मात्र जन्म के आधार पर जिनको समाज में एक ही प्रकार का जीवन मिला है। मनुष्य के रूप में उनके मूल्यों को नकारा गया है। मानव के रूप में जिनके अधिकारों को ठुकराया गया है। यहाँ विशिष्ट परिस्थितियों से वर्ण व्यवस्था का अर्थ अभिप्रेत है। लेकिन 'दलितों' के साथ केवल वर्ण व्यवस्था से निर्मित समस्याएँ ही नहीं है, बल्कि आर्थिक समस्याएँ भी जुड़ी हुई है। लेकिन उनको वर्ण व्यवस्था के कारण कभी शोषित नहीं होना पड़ा।

"कोई भी आदमी दलित नहीं होता, कोई भी साहित्य दलित नहीं रहता, फिर भी मैं स्वयं को दलित लेखक ही कह लेना पसन्द करूँगी। वास्तव में दलित एक जातिगत बीमारी है। मेरा लेखन मनुष्य का चरित्र–चित्रण करता है, वह किसी जाति विशेष का नहीं है—और फिर भी वह दलित है। दलित शब्द से अनेक प्रकार का बोध होता है, जैसे—अपमान–बोध, दुःख–बोध, दैन्य–दासत्व बोध जाति–वर्ण बोध, विश्व–बन्धुत्व बोध और क्रान्ति–बोध।"[21]

संक्षेप में दीनता, दासत्व, अपमान, जाति, वर्ग, विश्व बन्धुत्व तथा क्रान्ति बोध के अलावा भी जितने भाव–बोधों का ज्ञान इस शब्द से हो सकता है—वही

---

20. लोक भारती मानक हिन्दी हिन्दीकोश — आचार्य रामचन्द्र वर्मा, पृ. 420
21. दलित साहित्य आन्दोलन और विकास — डॉ. चन्द्रकुमार वरठे, दलित कौन है, पृ. 67 व 68

'दलित' क्रान्तिबोध का प्रतीक है। क्रान्ति ध्वज का निशान है। भारतीय संस्कृति और परम्परा के परिप्रेक्ष्य में विद्रोही मनुष्य की दुंदुंभी है।

दलित साहित्य क्या है?

सदियों से पीड़ित समाज पर जो अन्याय और अत्याचार किये जाते रहे हैं उसका विरोध और दलित जीवन का चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। स्वयं डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने 'मूकनायक' नामक पाक्षिक का प्रकाशन आरम्भ किया था, इस पत्र पर सन्त तुकाराम का 'अभंग' अंकित था।

"काय करूँ आता, धरूनिया भीड़
निःशंक हे तोड़, वाजविले,
नव्हे जगी कोणी मुकियाचा जाण
सार्थक लाजून नव्हे हित॥"[22]

अर्थात् अब लाज शर्म रखकर क्या करूँ मैंने मुख खोला है, तो निःसन्देह बोलूँगा ही। मूक और निरीह लोगों का संसार में कोई नहीं है, यह जानकर ही मैंने यह कार्य किया है।

"पैन्थर्स सोचते हैं—

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त स्वातन्त्र्य समता, बन्धुत्व और न्याय इन मानवीय मूल्यों का जहाँ हम उपभोग नहीं कर सकते, वह राष्ट्र हमारा कैसे हो सकता है। जहाँ हमारी माँ-बहनों को नग्न करके उन पर बलात्कार किये जाते हैं, भाइयों की आँखें निकाल ली जाती है, जहाँ हमें पीने का पानी तक नहीं मिलता, जहाँ हम न्याय की माँग नहीं कर सकते हैं, जहाँ हम पर अमानवीय अत्याचार किये जाते हैं, हमें मौत के घाट उतार दिया जाता है वहाँ राष्ट्र हमारा कैसे हो सकता है।"[23]

---

22. दलित साहित्य आन्दोलन और विकास — डॉ. चन्द्रकुमार वारठे, दलित साहित्य क्या है? पृ. 69 व 70
23. दलित साहित्य आन्दोलन और विकास — डॉ. चन्द्रकुमार वारठे, दलित साहित्य क्या है? पृ. 69 व 70

विकीपिडिया—एक मुक्त ज्ञानकोश के अनुसार दलित-साहित्य—

"दलित अर्थात् वे लोग जो आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े रहे और जिनका आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक रूप से प्राचीन काल में उच्च वर्ण के द्वारा शोषण किया गया था। इससे यह स्पष्ट है कि समाज अर्थात् वर्ग व्यवस्था में सबसे निचली पायदान वाले दलित कहलाते हैं।"[24]

डॉ. श्योराम सिंह 'बेचैन' के अनुसार—

"अनुसूचित जाति के अन्तर्गत आने वाले वर्ग को 'दलित' की संज्ञा देते हैं। उनका मानना है कि 'दलित' वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है।"[25]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'दलित' की परिभाषा इन शब्दों में व्यक्त की है—

"दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज व्यवस्था के तहत् सबसे निचले पायदान पर है। वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा है, उसका दलन हुआ है, इस समूह को ही संविधान में अनुसूचित जातियाँ कहा गया है, जो जन्मना अछूत है।"[26]

सोहनपाल सुमनाक्षर ने दलित की परिभाषा इस प्रकार लिखी है—

"दलित वह है, जिसका दलन किया गया हो, 'शोषण' किया गया हो, उत्पीड़ित किया गया हो। उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, वांछित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं। इस तरह 'दलित' शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक बंधनों में बाधित नारी एवं बच्चे भी इसमें शामिल है। भूमिहीन,

---

24. http://hi. wikipedia. org/wik/dalit
25. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 13
26. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 14

अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित, निराश्रित भी दलित ही है। दलित शब्द जहाँ व्यक्ति को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और अपने गौरवमयी इतिहास पर दृष्टिपात करने को बाध्य करता है, वहीं अवगति, वर्तमान स्थिति और तिरस्कृत जीवन के विषय में सोचने के लिए भी विवश करता है।"[27]

सोहनपाल सुमनाक्षर अपनी परिभाषा में दलित वर्ग को व्यापक संदर्भ में लेते हैं, जिनमें बन्धुआ, मजदूर, दास और गुलाम भी हैं और स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल हैं।

मराठी कवि नारायण सूर्बे का कहना है कि "दलित शब्द की मिली-जुली परिभाषाएँ हैं। इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं, समाज में जो भी पीड़ित हैं, वे दलित हैं।"[28]

सूर्बे 'दलित' शब्द को व्यापक दृष्टिकोण से देखते हैं, जिसमें समाज के पीड़ित, उपेक्षित एवं शोषित लोग हैं, चाहे वे किसी भी जाति या धर्म के हो सभी दलित हैं।

मार्क्स के अनुसार—

"मार्क्स मानते हैं कि साहित्य एवं कला समाज के आर्थिक भौतिक धरातल से नियत होती है।" उनका विचार है कि "सामाजिक जीवन की उत्पादन प्रक्रिया में मनुष्य ऐसे सुनिश्चित सम्बन्धों की स्थापना करते हैं, जो अपरिहार्य है। इन सम्बन्धों का योग अथवा सम्पूर्णता ही समाज के आर्थिक धरातल का निर्माण करती है, उसका वह सही आधार बनी है, जिस पर एक न्यायिक तथा राजनैतिक बाह्य संरचना खड़ी होती है, और सामंजस्य स्थापित करते हैं। सामान्यतः भौतिक जीवन की उत्पादन विधि ही हमारे सामाजिक, राजनैतिक और बौद्धिक जीवन की प्रक्रिया को अनुकूलित

---

27. विश्व धरातल पर दलित साहित्य — सोहनपाल सुमानाक्षर, पृ. 9
28. दलित साहित्य को सौन्दर्यशास्त्र — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 15

करती है। मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती, बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का निर्धारण करता है।"[29]

आधुनिक हिन्दीकोश के अनुसार दलित वह है—"जिसका दलन हुआ हो, कुचला हो, मर्दित, खण्डित, दमित। विशेषतः समाज का वह निम्न वर्ग जिसे सामाजिक न्याय और आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त न हो।"[30]

मैनेजर पाण्डे ने लिखा है—

"दलित वे हैं, जिन्हें भारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है या जिन्हें समाज ने अछूत माना जाता है।"[31]

राजकिशोर के अनुसार—

"दलित शब्द एक वर्गीय शब्द ठहरता है, भारत एक गरीब देश है। यहाँ की आधी आबादी आर्थिक दृष्टि से दलित है। लेकिन जिन्हें दलित कहा जाता है उनका दंश कुछ और ही है। 'दलित' शब्द उन जातियों के अर्थ में रूढ़ होता जा रहा है, जिन्हें अछूत या हरिजन कहा जाता था। इनके लिए कानूनी शब्द अनुसूचित जाति है।"[32]

इस प्रकार इन सभी परिभाषाओं में जो विद्वानों हमारे सामने आये हैं वे 'दलित' शब्द को व्यापक संदर्भ में देखते हैं। संक्षिप्त अर्थ के अनुसार दलित के अन्तर्गत केवल वर्ग के आधार पर शोषित लोग ही आते हैं। जिन्हें समाज में अछूत व अस्पृश्य माना गया है तथा भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया

---

29. हिन्दी साहित्य आन्दोलन और विकास — चन्द्रकुमार वारठे, पृ. 71
30. आधुनिक हिन्दी शब्दकोश — स. गोविन्द चातक, पृ. 279
31. अनभै साँचा — मैनेजर पांडेय, पृ. 274
32. धर्मयुग, मई 1994, अगर मैं दलित होता, राजकिशोर, पृ. 22

है। दलित के व्यापक अर्थ में सभी प्रकार के शोषित, पीड़ित व उपेक्षित आते हैं। वे चाहे किसी भी जाति, धर्म, समुदाय, लिंग के ही क्यों न हो। इन्हें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक अधिकारों से दूर रखा गया है।

'दलित' शब्द की परिभाषा में तीन मत उभरकर सामने आते हैं। जिनमें पहला मत है कि 'दलित' वे लोग है जो समाज में 'अछूत' है, जिन्हें संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त है। दूसरे में दलित वे लोग है जिन्हें समाज में अछूत और आदिवासी कहा जाता है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग। तीसरे मत के अनुसार दलित वे हैं, जो गरीब है या आर्थिक रूप से कमजोर है, अब इन तीनों मतों का परीक्षण करते हैं, जिससे 'दलित' का सही अर्थ प्रस्तुत हो सके।

पहला मत है कि 'दलित' वे लोग है, जो समाज में अछूत है। अब हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि अछूत कौन है और उनका आधार क्या है? अछूतों की ऐतिहासिकता क्या है? सिद्धान्त रूप से देखने पर स्पष्ट होता है कि अछूत वे लोग है जो हिन्दू वर्णाश्रम व्यवस्था में शामिल नहीं है या उसके अंग नहीं है अथवा वर्णाश्रम समाज व्यवस्था ने उनकी नागरिकता छीन ली है। इस व्यवस्था में दलितों को किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं है। व्यवहार रूप में देखा जाये तो समाज में अछूत वे लोग है, जिन्हें वर्णाश्रम व्यवस्था में आने वाला समाज हर स्तर पर अलग रखता है। उनको अपने समाज का अंग नहीं मानते हैं। किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते। सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्तर पर उनसे दूरी रखता है। वर्णाश्रम व्यवस्था को मानने वाला समाज दलितों की छाया मात्र से अपवित्र हो जाता है ऐसी मानसिकता रखता है। इसलिए उनकी छाया से भी डरता है। अछूतों को गाँव के बाहर दक्षिण की तरफ रहने को दिया जाता है। अछूतों को चारपाई पर लेटना वर्जित था। इनकी औरतें

गहनें नहीं पहन सकती थी। इनसे कठिन से कठिन और गंदा से गंदा काम कराया जाता था। खाने के लिए जूठन और बचा हुआ भोजन दिया जाता था।

यहाँ एक नया प्रश्न उठता है कि अछूत ही वर्णाश्रम व्यवस्था से बाहर है? और कई समूह है। यदि कोई दूसरा समूह है तो क्या उसके साथ भी अछूतों की तरह व्यवहार किया जाता है। यदि दोनों स्थितियाँ सत्य है तो 'दलित' की यह परिभाषा कि—"दलित वे हैं जो समाज में अछूत है, अपूर्ण है। यदि गहराई से विचार किया जाये तो एक दूसरी स्थिति सामने आती है। वह यह है कि कोई समूह वर्णाश्रम समाज व्यवस्था से बाहर है लेकिन उस पर छुआछूत का नियम लागू नहीं होता, तो क्या हम उसे दलित की श्रेणी में रख सकते हैं? उसे दलित श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में वह मात्र व्यावहारिक शर्त को ही नकारता है, सैद्धान्तिक शर्त को नहीं।"

दलितों की दूसरी परिभाषा के अनुसार अछूत और आदिवासी दोनों दलित हैं। इस परिभाषा का परीक्षण आवश्यक है। यदि हिन्दू वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार देखा जाये तो अछूत और 'आदिवासी' दोनों ही वर्णाश्रम व्यवस्था से बाहर है और वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार दोनों दलित है। यदि हम इनकी ऐतिहासिकता पर विचार करें तो हम देख सकते हैं कि अछूत और आदिवासी दोनों के पूर्वज एक ही है, लेकिन एक विशेष अवस्था व सामाजिक संघर्ष के कारण दोनों के रहने के स्थान अलग-अलग हो गये हैं। अछूत ग्रामीण सभ्यता से जुड़े रहे, जबकि आदिवासी ग्रामीण सभ्यता से दूर पठारों, पहाड़ों व जंगलों में रहने लगे। वर्णाश्रम व्यवस्था में दोनों के प्रति समान व्यवहार किया जाता है। दोनों ही वर्णाश्रम व्यवस्था से बाहर है।

कौशल्या वैंसत्री ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "कुछ आदिवासी औरतें (गौंड) साथ ही सड़क के पार बने जंगलों में स्पृश्य लोगों के घर बर्तन माँजना,

झाड़ू-पोंछा, कपड़े धोने का काम करती थीं। वहाँ के लोग अछूतों से यह काम नहीं कराते थे। वैसे देखा जाये तो गौंड जाति का रहन-सहन महार-माँगों जैसा ही था। न वे पढ़े लिखे थे, न वे अमीर, परन्तु वे अछूत नहीं थे। किन्तु ब्राह्मण या उच्च समझे जाने वाले लोग उन्हें घर की चीजें छूने नहीं देते थे। बाहर नल होते थे, वहाँ बर्तन, कपड़े धोकर वहीं रखते। बाद में घर के लोग एक बार फिर पानी से निकाल कर अन्दर लाते थे।...वे इनसे छुआछूत करते थे।"[33]

अतः स्पष्ट है कि आदिवासियों के साथ भी अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता है। आदिवासियों का भी मानसिक शोषण उसी तरह होता है, जिस प्रकार अछूतों का होता है।

अब तीसरे मत के अनुसार 'दलित' वे हैं, जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं अथवा जो गरीब हैं। इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक स्थिति ही 'दलित' का निर्धारण करती है। यहाँ प्रश्न यह है कि इसका आधार क्या है? कल जो गरीब था आज वह अमीर हो सकता है और आज जो अमीर है कल वह गरीब हो सकता है। किसी व्यक्ति का गरीब होना उसका स्थायी गुण नहीं है उसमें कभी भी परिवर्तन हो सकता है। मेहनत करके भी गरीब आदमी अमीर बन सकता है, लेकिन दलितों की मूल समस्या सामाजिक है। इसलिए कबीर जैसे संत ने भी आर्थिक स्थिति की अपेक्षा सामाजिक स्थिति की बात कही है, क्योंकि दलित व्यक्ति कितना भी अमीर क्यों न हो फिर भी उसके साथ छुआछूत का व्यवहार किया जाता है। इसलिए गरीबी किसी वर्ग के निर्धारण का कोई पैमाना नहीं है। अतः तीनों प्रकार की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अछूत और आदिवासी दोनों ही दलित हैं, क्योंकि ये दोनों ही वर्णव्यवस्था के शिकार

---

33. दोहरा अभिशाप — कौशल्या बैंसत्री, पृ. 32

हुए है। इनके साथ जघन्य अत्याचार हुए है और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक शोषण भी हुआ है।

हिन्दी साहित्यकोश में दलित वर्ग के रूप में 'दलित' शब्द को परिभाषित किया गया है—"यह समाज का निम्न वर्ग होता है, जिसको विशिष्ट संज्ञा आर्थिक व्यवस्थाओं के अनुरूप ही प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ दास प्रथा में दास, सामन्तवादी प्रथा में किसान, पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर समाज का दलित वर्ग कहलाता है।"[34]

वर्तमान समय में उत्तर आधुनिक विमर्श ने हाशिए के वर्गों को केन्द्र में लाने की पहल की है और विभिन्न भारतीय भाषाओं में 21वीं शताब्दी के दशकों में दलित विमर्श तीव्रता (क्रांक्रीट डिवीजन) के साथ उभरा।

आज भारतीय संविधान में प्रदत्त प्रावधानों के चलते लोग बढ़-चढ़कर लिख रहे हैं। वे न केवल राजनीति, संस्कृति, नौकरी बल्कि साहित्य में भी हस्तक्षेप करने लगे। अपने समाज में किये गए जुल्मों की कथा लिखकर उन अभिजन, शिष्ट, सवर्णों की नई संतति को आत्ममंथन करने पर मजबूर ही नहीं कर रहे हैं, अपितु उनके मन में आत्मग्लानि और अपराध बोध भी पैदा कर सामाजिक न्याय की चेतना का समर्थन प्राप्त करने में सफल होने लगे हैं। हिन्दी दलित साहित्य विद्या मराठी साहित्य से प्रभावित हैं, अतः आज दलित साहित्य को लेकर कई जगहों पर बहस होती है, कई सवाल इस पर खड़े किये जाते हैं। प्रस्तुत साहित्य को लेकर इसके कई दोष गिनाए जाते हैं। अनेक संगोष्ठियों का विषय भी दलित साहित्य पर आधारित है। अनेक संगोष्ठियों में दलित साहित्य पर होने वाली बहस ने मुझे काफी प्रभावित किया और मैंने सोचा कि बीसवीं सदी की यह देन इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक तक आते-आते काफी सशक्त हो एक नई विद्या बन के उभरने लगी। भले प्रारम्भ में पढ़कर

---

34. हिन्दी साहित्यकोश भाग-1, पारिभाषिक शब्दावली सं. — धीरेन्द्र वार्मा, पृ. 284

साहित्य की अन्य विद्याओं के समान इसे भी नकारेंगे, आलोचना, बहस करेंगे, लेकिन सत्य परेशान होता है, अपितु पराजित नहीं होता है।

आज 21वीं सदी में कुछ लोग पढ़–लिख गये हैं। परन्तु अभी भी ऐसा समाज बाकी है, जो अपने इस परम्परागत पेशे में अटका है। जिन्हें अपनी कलाओं के अलावा दूसरा कुछ काम नहीं आता। परन्तु इस आधुनिक यन्त्रों ने इन्हें भूखे मरने पर मजबूर कर दिया है। लेखक को ये हालात देखकर चिन्ता हो रही है कि आनेवाले युग में उसके समाज की ही तो मृत्यु नहीं हो जाएगी। और इसलिए इस दलित समाज में चेतना की आवश्यकता है, इनमें अपने प्रति, अपने समाज के प्रति संगठित एवं संघर्षित होना जरूरी है। तभी यह दलित समाज अपनी तरक्की कर अपना रक्षण कर पायेगा।

❑

द्वितीय अध्याय

हिन्दी 'कथा–साहित्य' में दलित चेतना की प्रवृत्तियों का स्वरूप

परम्परागत साहित्य से पृथक दलित साहित्य का निर्माण हुआ है और उसकी अपनी अलग पहचान बनी है तो इसका कारण भी यही है कि समाज की तरह साहित्य में भी दलितों को हाशिए पर रखा गया तथा उनकी आवाज को अनसुना और उपेक्षित किया गया। दलित क्या सोचता है, वह क्या चाहता है, उसकी आशा आकांक्षाएँ क्या हैं? वह दीनहीन है, लेकिन क्यों? इसका क्या कारण है और कैसे उसको इस स्थिति से उबारा जा सकता है? इस ओर समुचित रूप से कभी कोई ध्यान नहीं दिया गया। सदियों से दासता और दलन के शिकार दलितों द्वारा अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए किए जा रहे संघर्ष को रेखांकित नहीं किया गया। दलितों के हित में ऐसे साहित्य के सृजन की नितान्त आवश्यकता थी जो दलितों को उनकी अस्मिता से परिचित कराए, अज्ञान के अंधेरे को बाहर निकालकर उनको ज्ञान का सूर्य दिखाए, अन्धविश्वासों आडम्बरों के जाल से मुक्त कर तर्क और वैज्ञानिकता का पाठ पढ़ाए, हीनता की गर्त से निकालकर उन पर आत्मविश्वास का संचार को उनमें आत्म–सम्मान, स्वाभिमान और गौरव से जीने की भावना पैदा करें।

किसी भी साहित्यिक प्रवृत्तियों के मूल्य, मानदण्ड़ और मान्यताएँ उस धारा को अद्‌भुत और विकसित करने वाले साहित्यकार और उसके समाज की शिक्षा, संस्कृति और उसके चिन्तन के आधार पर बनती और विकसित होती है। उसके उद्‌भव, उद्देश्य और आवश्यकता के पीछे उसके समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ उसकी धार्मिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों या परम्परा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

दलित चेतना की सामाजिक प्रवृत्तियाँ

बुद्धशरण 'हंस' के अनुसार वर्तमान समय में सामाजिक न्याय की बात राजनैतिक स्तर पर जोरों से चल रही है। बुनियादी तौर पर जनता दल की वर्तमान सरकार ने अपने कार्यक्रम में सामाजिक न्याय को अपना मुख्य मुद्‌दा बनाया है, जिसे अन्य दलों ने भी अपने कार्यक्रम में शामिल किया है।

मार्गदाता बाबासाहब अम्बेडकर ने सबसे पहले सामाजिक परिवर्तन का मुद्‌दा उठाया। उनका स्पष्ट मत था कि बिना सामाजिक परिवर्तन के दलितों को उनका मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।

सामाजिक परिवर्तन के जन्म और आन्दोलन के साथ ही दलित साहित्य का जन्म हुआ है। दूसरे शब्दों में दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन की उपज है। यहाँ हम यह स्मरण रखें कि सामाजिक न्याय भिन्न है सामाजिक परिवर्तन से और सामाजिक परिवर्तन भिन्न है सामाजिक न्याय से। ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणवादी साहित्य लिखे जाते रहे। ब्राह्मणवादी साहित्य में जाति भेद, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता, पुरोहितवाद, भाग्य, भगवान आदि सनातनी विचारों का पिष्टपेषण होता रहा है। विज्ञान और विकास की बातों को इस साहित्य में नकारा गया है। दलित साहित्य ने

सामाजिक पृष्ठभूमि पर इन सारे अन्तर्गत तत्वों में आमूलचूल परिवर्तन को आधार बनाया है। सामाजिक परिवर्तन दलित साहित्य की नींव है, आधार–स्तम्भ है। दलित साहित्य सनातनी विचारधारा को जड़मूल से उखाड़ फेंकने का आह्वान करता है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विध्वंस इस साहित्य का निशाना है। जाति–व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था को पूर्णरूप से नकारकर मानवतावाद का विस्तार करना दलित चेतना का स्पष्ट उद्देश्य है आज भारतीय समाज में जो भी मानवतावादी परिवर्तन हो रहे हैं, इन सबका यह साहित्य उन्मुक्त लायक, प्रचारक और प्रशंसक है।

हिन्दू समाज व्यवस्था में चार वर्ण वाले लोग रहते हैं ये चार वर्ण हिन्दू समाज का अभिन्न अंग है। इसको हर व्यक्ति को मानना पड़ेगा। इसे जो नहीं मानेगा वह समाज व्यवस्था से बाहर कर दिया जायेगा। इस व्यवस्था में चतुर्थ वर्ण को उच्च वर्णों के लोग तय करते हैं। ईश्वर का भय दिखाकर निम्न वर्ण का शोषण हजारों साल से किया जा रहा है। इस हिन्दू वर्ण व्यवस्था में यह प्रावधान है कि व्यक्ति को अपना कार्य करना है, फल की आशा नहीं करनी, ईश्वर ही खुश होकर फल देगा।

दलित साहित्य की सबसे बड़ी समस्या सामाजिक समस्या है। इस समस्या में समानता व स्वतन्त्रता प्रमुख है क्योंकि हिन्दू समाज व्यवस्था न कभी भी दलितों को समानता का दर्जा नहीं दिया। दलित साहित्य का सबसे बड़ा मुद्दा सामाजिक समानता है। हिन्दू समाज में कोई दलित कितना ही श्रम करें उसे उसकी जाति देखकर ही मेहनताना मिलेगा। यदि कोई दलित आर्थिक आधार पर उच्च वर्ग के लोगों के समान हो जाता है तो भी वह दलित ही रहेगा, उसकी जाति ऊँची नहीं हो सकती क्योंकि वह एक दलित है। कोई दलित भीख माँगकर नहीं खा सकता, जबकि कोई ब्राह्मण भीख माँगकर खाता है तो उसे लोग ब्राह्मण देवता कहकर भिक्षा दे देते हैं, लेकिन कोई

दलित ऐसा करता है तो उसे गाली सुनने को मिलती है कि कमाकर नहीं खाया जाता। इसलिए दलित साहित्य में यही सवाल प्रमुख है कि हमें सामाजिक समानता मिलनी चाहिए। यही बात कबीरदास के यहाँ देखी जा सकती है। कबीर ने कभी भी आर्थिक समानता की बात नहीं की। आर्थिक समानता तो मेहनत से प्राप्त की जा सकती है लेकिन सामाजिक समानता नहीं। इसलिए कबीरदास ने सबसे ज्यादा जोर सामाजिक समानता पर दिया है। आज का जो 'दलित साहित्य तथा दलित पत्रकारिता' उसका भी मुख्य मुद्दा यही है कि हमें सामाजिक समानता चाहिए, आर्थिक समानता हम मेहनत से प्राप्त कर सकते हैं। दलितों को गरीबी नहीं समाजिक बेइज्जती अखरती है। इस सामाजिक असमानता के कारण ही एक गरीब ब्राह्मण आर्थिक रूप से दलितों जैसा जीवन तो जी सकता है लेकिन उसके साथ दलितों जैसा व्यवहार तो नहीं किया जाता। उसके साथ छुआछूत, भेदभाव, ऊँच-नीच नहीं बरती जाती है। उसे तो ब्राह्मण देवता कहकर उसका सम्मान किया जाता है।

सच्चिदानन्द सिन्हा ने लिखा है कि "यह व्यवस्था दूसरी व्यवस्थाओं की अपेक्षा इस कारण बहुत लम्बे समय तक चल पाई, क्योंकि इसमें बदलावों को अपने अन्दर संभाल लेने या खुद को उनके अनुरूप ढ़ाल लेने की क्षमता रही है और इसके चलते व्यवस्था को बदलने की जरूरत नहीं पड़ी।"[1]

इनके अनुसार यहाँ के लोग व्यवस्था में जीने को मजबूर है, क्योंकि इसको बदलने की कोई ज्यादा जरूरत समाज को महसूस नहीं हुई। धीरे-धीरे अपने आप समाज में निचले पायदान पर बैठा व्यक्ति ऊपर पायदान पर पहुँच जायेगा।

---

1. जातीय व्यवस्था, मिथक, वास्तविकता और चुनौतियाँ — सच्चिदानंद सिन्हा, पृ. 162

"हिन्दी साहित्य में दलितों की सामाजिक स्थिति पर विचार करने से पहले दलित शब्द के मूल में जाना होगा, उनकी स्थिति के लिए जिम्मेदार घटकों पर विचार करना होगा। वर्ण का निर्धारण पहले व्यवसाय, स्वभाव, संस्कृति आदि के आधार पर ही था। पीछे जाति के प्रकट होने पर वर्ण का आधार भी बीज-क्षेत्र विचार हो गया।"[2]

इस व्यवस्था में दलितों के सारे अधिकार छीन लिए उसको दलित समाज के लोग कैसे स्वीकार करते गये, उसके पीछे सबसे बड़ा कारण ये भी है कि दलितों को कभी अपनी बात कहने का अवसर नहीं दिया, शिक्षा से हमेशा दूर रखा गया। न्याय करके सारे अधिकार उच्च वर्ग के लोगों के पास रहे अपने अनुसार न्याय करते गये, क्या गलत है और क्या सही है, इसमें भी अपने अनुसार बनाते गये। कोई दलित पढ़ने की कोशिश करता था तो उसके साथ बहुत ही घृणित व्यवहार स्कूलों में किया जाता है। शिक्षक भी इस तरह का व्यवहार करते थे—"एक रोज हैडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा, 'क्या नाम है बे तेरा?'...'ओमप्रकाश।' मैंने डरते-डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया। हैडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनसे दहशत थी।

'चूहड़े का है?' हैडमास्टर का दूसरा सवाल उछला।[3]

'जी।' ठीक है...वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़के झाड़ू बणाले। पत्तोंवाली झाड़ू बणाना। और पूरे स्कूल कूं ऐसा चमका दे जैसा सीसा। तेरा तो यो खानदानी काम है। जा...फटाफट लग जा काम पे।"[4]

---

2. इक्कीसवीं सदी का दलित आन्दोलन, हिन्दी साहित्य में दलितों की सामाजिक स्थिति — डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ. 168
3. एक दलित की आत्मकथा — ओमप्रकाश वाल्मीकि, हरिजन से दलित, पृ. 19
4. सम्पादक — राजकिशोर, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2004

हिन्दी साहित्य में दलितों की इस सामाजिक स्थिति का चित्रण और विरोध तो मिलता है लेकिन शूद्रों के प्रति इस घृणा और दण्ड़-विधान के कारणों का उल्लेख नहीं मिलता है। यही नहीं यह सवाल लेखकों मनीषियों और बुद्धिजीवियों को भी मौन रहने पर विवश कर देता है। ईश्वर की इस सृष्टि में सभी समान है। भक्तिकालीन साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय के समर्थक कबीर की दृष्टि में हरिजन, दलित का पर्याय नहीं है, वह हरिजन है। कबीर की निर्भीक वाणी में यह कहने का साहस था—

ऊँचे कुल क्या जनमिया, जे करणीं ऊँच न होई।
सोवन कलस सुरै भरया, साधौ नीद्या सोई॥[5]

कबीर ने वर्ण व्यवस्था को जातिगत मानने पर घोर विरोध किया है। हिन्दी साहित्य की सन्त परम्परा में सन्त रैदास ने कबीर की विचारधारा का पोषण किया लेकिन बिना किसी को फटकारे, बिना किसी प्रखर विरोध के।

सदियों से यह दु:ख दलित झेलता आया है। हजारों मकान दलितों ने खड़े किये हों लेकिन स्वयं कभी उन्हें घर नहीं मिला। वह खेतों में बहुत धन उपजाता है, लेकिन उसे कभी भरपेट भोजन नहीं मिला। इस बात को कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है—

"मैं खटता खेतों में,
फिर भी भूखा हूँ
निर्माता महलों का
फिर भी निष्कासित हूँ, प्रताड़ित हूँ।।"[6]

---

5. इक्कीसवीं सदी का दलित आन्दोलन, हिन्दी साहित्य में दलितों की सामाजिक स्थिति, संख्या — डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ. 169
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि — सदियों का सन्ताप, पृ. 24 से 25

दलित लेखन एवं साहित्य में वह सारी चीजें हमारे सामने एक-एक करके प्रस्तुत होती है, जिसमें दलित व गैर-दलित की कार्यप्रणाली स्पष्ट होती है। दलित किसी व्यक्ति का शोषण नहीं करता लेकिन गैर-दलितों ने कितना शोषण किया है, इन पंक्तियों से समझा जा सकता है-

"वे भूखे हैं, पर आदमी का मांस नहीं खाते,
प्यासे हैं, पर लहू नहीं पीते,
नंगे हैं, पर दूसरों को नंगा नहीं करते,
उनके सिर पर छत नहीं है,
पर दूसरों के लिए छत बनाते हैं।" [7]

शिक्षा की बात की जाती है शिक्षित होने पर दलित की सामाजिक समस्याओं का निवारण हो जाता है। दलितों को समाज में कभी पढ़ने-लिखने का अधिकार नहीं दिया। इस अशिक्षा के कारण ही दलितों की यह दशा हुई।

इस शिक्षा का महत्त्व ज्योतिबा फूले ने समझा, इसलिए दलितों के लिए शिक्षा का बहुत बड़ा महत्त्व है। अशिक्षा के कारण ही दलितों को शोषित किया जाता है। फूले ने कहा कि दलितों के सारे दुःखों की जड़ अशिक्षा है।

विद्या बिना मति गयी। मति बिना नीति गयी।
नीति बिना गति गयी। गति बिना वित्त गया।
वित्त बिना शूद्र गये। इतने अनर्थ एक अविद्या ने किए।[8]

---

7. वे भूखे हैं — ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित निर्वाचित कविताएँ, केवल भारती, पृ. 71
8. वसुधा, अंक 58, जुलाई-सितम्बर, 2003 पृ. 72

इस अविद्या के कारण ही दलितों की बुद्धि, विवेक, नीति, गति, वित्त सब नष्ट हो गये और वित्त के बिना शूद्रों की यह स्थिति नारकीय बनी हुई है। इसलिए सबसे पहले दलितों को शिक्षित होना चाहिए यही बात आगे चलकर बाबासाहेब अम्बेडकर भी कहते हैं कि शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो। शिक्षा की शक्ति को महात्मा ज्योतिबा फूले और अम्बेडकर साहेब ने पहचाना है। दोनों ही महापुरुषों ने दलितों के लिए शिक्षा को जरूरी बनाया। बाबासाहेब अम्बेडकर ने तो दलितों के लिए अंग्रेजों 'ज्ञान' को शेरनी का दूध कहा है।

ये सभी विशेषताएँ भारतीय साहित्य में दिखाई पड़ती है। हिन्दी दलित साहित्य एवं लेखन के समान भारतीय भाषाओं में जो दलित साहित्य लिखा जा रहा है वह एक सा ही है। भारत में दलितों के साथ एक सा व्यवहार किया जाता है। चाहे वह उत्तरप्रदेश हो या बिहार हो या फिर महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडू। पूर्व से लेकर पश्चिम और उत्तर से लेकर दक्षिण तक दलितों की एक ही समस्या है। उनको समाज में कभी अपनी बात नहीं कहने दी गई। कभी समान अवसर नहीं दिये, हमेशा शोषण किया गया, नारकीय जीवन जीने को मजबूर किया गया। अपने पैतृक व्यवसाय के अलावा दूसरा कोई व्यवसाय नहीं करने दिया गया। हिन्दू समाज व्यवस्था में ऊँच-नीच को बरकरार रखा गया, छुआछूत, जांत-पांत को ज्यों का त्यों स्वीकार किया गया। दलित लेखन एवं साहित्य में अखिल भारतीय स्तर पर एक नये समाज के निर्माण का संकल्प और दलितों के शोषण के जितने भी साधन है उन सबको नकारा गया। दलित लेखन एवं साहित्य इस प्रकार शोषण के खिलाफ एक ऐसी समाज व्यवस्था को प्रस्तुत करता है जिसमें सब समान है, सबके लिए समान अवसर, कोई किसी का शोषण नहीं करेगा।

"वर्ण-व्यवस्था जो कि समाज में श्रम-विभाजन की जरूरत से पैदा हुई, धीरे-धीरे निहित स्वार्थ का हथियार बन गयी। शोषण एकाएक तगड़ा औजार भी बनती चली गयी। कुछ अरसे बाद एक परिस्थिति ऐसी आई कि समाज के एक बड़े हिस्से को शारीरिक श्रम के अलावा और कुछ भी छूने से रोक दिया गया। पढ़ने-पढ़ाने का काम, शा का ज्ञान आदि अभ्यासों से उसे अलग कर दिया गया। उस हिस्से को 'मन' के काम-काज से पूरा वंचित रखा गया। नतीजा यह हुआ कि समाज में रहते हुए वह हिस्सा समाज से कटता चला गया। समाज ने अपने बीच मानों एक हिस्से को विदेशी बनाए रखा। समय बीतने में मन के मारे लोग पेट से भी मारे जाने लगे। अलगाव की स्थिति में पलने वाले लोग समाज को अपना नहीं समझ पाये और न ही देश को। इसलिए जब-जब धर्म परिवर्तन का मौका आया तो इन लोगों ने हजारों-लाखों की तादाद् में दूसरे धर्म को स्वीकार किया। सम्मानपूर्वक जीने के लिए ऐसा उन्हें मजबूर होकर करना पड़ा। इसी तरह जब-जब बाहरी हमले हुए जनता ने उससे अपने को अलग रखा। विदेशी आकर सालों राज भी कर गए, फिर भी राजाओं के अतिरिक्त उन्हें और किसी से विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। सामाजिक एकान्मता न हो पाने के कारण राष्ट्रीय भावना भी कमजोर हो गई।"[9]

हिन्दू समाज एक ढीला-ढाला लोगों का ढेर मात्र है। इसमें जोड़ने से अधिक टूट की शक्ति सक्रिय रहती है। हिन्दुस्तानी समाज अन्याय और शोषण पर आधारित समाज है। धार्मिक क्षेत्र में तो यह उदारता की बात करता है पर धर्म भी असलियत में ऊँची जातियों का एकाधिकार मात्र है।

---

9. जाति : एक विमर्श सं. — जयप्रकाश कर्दम, मुहिम प्रकाशन, हापुड़- 245101, पृ. 44 व 45, वर्ष 1999

आर्थिक गैर बराबरी इस देश में सामाजिक गैर बराबरी का नतीजा है। दूसरे शब्दों में जाति-प्रथा के कारण आर्थिक गैर बराबरी जन्मी और पनपी। इसलिए ऐसा राजनैतिक दर्शन जो जाति-प्रथा को निर्मूल करने की बात नहीं करता है वह दरअसल में एक प्रतिक्रियावादी और यथास्थिति का दर्शन है। केवल आर्थिक दृष्टि से गैर बराबरी को समाप्त करने वालों का उतर्क भी असलियत में यथास्थिति को बनाये रखने का ही तर्क है। प्रगतिशील मुलम्मा ओढ़े इस देश के द्विजों का अपना वर्चस्व बनाए रखने की साजिश है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि भारतीय समाज के हर क्षेत्र में ऊँची जाति के लोगों का वर्चस्व है और जब तक इस स्थिति में परिवर्तन नहीं आएगा, तब तक सामाजिक न्याय की स्थापना की बात करना बेकार है। विकासशील देश में राजनीतिक तथा राज्य शक्ति परिवर्तन का औजार हुआ करती है। जब तक इसी 'औजार' पर ऊँची जातियाँ हावी हैं, तब तक सामाजिक परिवर्तन एक कल्पना मात्र रह जाती है।"[10]

(ख) राजनैतिक प्रवृत्तियाँ

किसी भी प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में जनमत और जनबल का बड़ा महत्त्व है। और किसी भी व्यवस्था का संचालन और निर्माण बहुमत द्वारा ही निर्धारित होता है। राजनीति में भी शक्ति और सत्ता सम्पन्न वही है जिसके पास जनबल है। राज्य और राज्यों की नीति निर्धारण और निर्माण साथ ही हित चिन्तन में जनसंख्या और उनके मत विश्वास को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसी बात को जियालाल आर्य इस प्रकार कहते हैं—

10. जाति : एक विमर्श सं. — जयप्रकाश कर्दभ, मुहिम प्रकाशन, हापुड़- 24510, पृ. 45, वर्ष 1999

"लोकतान्त्रिक व्यवस्था में संख्या और संगठन का बहुत महत्त्व है। संख्या कम होने पर भी यदि एकतान्त्रिक संगठन है, एक आवाज, एक पहचान है तब उसका महत्त्व आज की व्यवस्था में अधिकतम है। इसी बल पर सवर्ण जातियाँ भारत और भारत के राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था पर आधिपत्य बनाये हुए है। पचास प्रतिशत अवर्ण जातियों पर पन्द्रह प्रतिशत की सवर्ण जातियों का राज है। संगठन के साथ बुद्धिबल का विशेष महत्त्व है आज की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में जिसके पास वित्तबल, बुद्धिबल और संगठन बल होता है वही राज करता है। उसका आधिपत्य आर्थिक स्रोतों पर-कृषि, उद्योग, व्यवसाय एवं नौकरी आदि पर होता है।"[11]

दलित चेतना की पहचान के लिए दलित वर्ग के महानायकों का कहना है कि "सबसे पहले शोषित वर्ग को उसके दुःख-दर्द का एहसास कराओ। इस एहसास को चेतना में बदलो और संगठन को राजनीतिक दल का आकार दो। अब राजनीतिक दल को सत्ता में बदल दो।"[12]

दलित चेतना की राजनीति के लिए बहुजन समाज पार्टी के लिए कहा कि "बसपा के विचार का मूल सिद्धान्त असमानता की राजनीति और समानता के आदर्श पर आधारित है। कांशीराम का सारा दृष्टिकोण और वैचारिक पृष्ठभूमि ब्राह्मणवाद और मनुवाद के विरोध पर आधारित था। बसपा का संघर्ष इसी ब्राह्मणवाद के विरोध एवं दलित अस्मिता/ पहचान निर्माण में निहित है। बसपा उत्पीड़ित वर्ग की राजनीति के रूप में प्रकट हुई। बहुजन समाज पार्टी अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध शोषित-दलित तथा इस मनुवादी सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ एक महत्त्वपूर्ण

---

11. दलित समाज : आज की चुनौतियाँ — जियालाल आर्य, पृ. 24
12. दलित अस्मिता की राजनीति — प्रवेश कुमार, पृ. 116

सामाजिक राजनीतिक शक्ति बनकर उभरी है तथा इस नेतृत्व पर दलित पिछड़े वर्ग ने भरोसा भी किया है। इसका ही परिणाम है कि ये दिनों–दिन अधिक प्रासंगिक हो रही है। बसपा दलितों के लिए एक दलित दल के रूप में उभरी है जो अम्बेडकर के उन विचारों और प्रयासों के करीब थी जिसमें अम्बेडकर मानते थे कि दलितों का एक पृथक दल होना चाहिए, जो उनकी बात को, उनकी पीड़ा को उनके लोगों के द्वारा उच्च स्थानों (विधानसभा, लोकसभा) में उठा सके, कांशीराम ने इसी विचार को लिया और बसपा निर्माण की मुहिम को आगे बढ़ाया।"[13]

दलित चेतना की सामाजिक, धार्मिक समस्याओं के साथ राजनैतिक समस्या भी है। हिन्दू समाज में दलितों को हमेशा शासन व सत्ता से दूर रखा गया। यदि कोई दलित अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लेता है तो उसे भी ब्राह्मण कुल का घोषित करा देते हैं। पूर्वजन्म में उसे क्षत्रिय बता देते हैं।

यह सच है कि सामाजिक व धार्मिक आग्रहों के बाद डॉ. अम्बेडकर ने दलित आन्दोलन को राजनैतिक मोड़ दिया है। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर का यह मानना था कि सामाजिक सुधार होने के बाद ही राजनैतिक सत्ता कायम हो सकती है। डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा है कि हिन्दुओं से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि ये अपनी व्यवस्थाओं को बदलेंगे। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय दलित मुक्ति व चेतना के तमाम प्रश्नों को उन्होंने उठाया। उन्होंने सत्ता में दलितों की भागीदारी की माँग की। गोलमेज सम्मेलन में वे दलित प्रतिनिधि के रूप में गए, उन्होंने जोरदार शब्दों में दलितों का पक्ष रखा और हिन्दुओं से पृथक मानते हुए उनके लिए पृथक राजनैतिक अधिकारों की माँग की। बाद में पृथक निर्वाचक की माँग को मान लिया गया। इस माँग के

---

13. दलित अस्मिता की राजनीति — प्रवेश कुमार, पृ. 108

खिलाफ गाँधी ने आमरण अनशन शुरू किया था। अन्त में डॉ. अम्बेडकर और गाँधी जी के बीच समझौता हुआ, जो इतिहास में पूना पैक्ट 1932 के नाम से जाना जाता है।

पूना पैक्ट के बाद दलित राजनीति का उदय हुआ, डॉ. अम्बेडकर साहब ने 1936 में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी (स्वतन्त्र मजदूर पार्टी) का गठन किया था और 1937 में इसी राजनैतिक पार्टी में कई नेता आये। 1980 में कांशीराम ने वामसेफ (बैकवर्ड एंड मायनारिटीज कास्ट इम्प्लाई फेडरेशन) के माध्यम से भारतीय दलित राजनीति को नया मोड़ दिया। 1981 में कांशीराम ने डी. एस. 4 (दलित समाज शोषित संघर्ष समिति) की स्थापना की। यह दलित राजनीति के रूप में आगे होकर हमारे सामने आती है। 1984 में कांशीराम ने डी.एस. 4 को आगे 'बहुजन समाज पार्टी' का रूप दिया। सन् 1988 तक कांशीराम ने अस्पृश्यता, अन्याय, असुरक्षा और असमानता के विरुद्ध एक सघन समाजिक कार्यक्रम चलाया। इन्होंने दलित राजनीति को दलित विमर्श से जोड़ा और दलित विमर्श को आगे बढ़ाया। इस दलित विमर्श से ही दलित चेतना की सही में राजनैतिक स्तर पर शुरुआत होती है और आगे चलकर दलित राजनीति में मायावती जैसे सशक्त महिला भी आई जो आगे जाकर उत्तरप्रदेश जैसे राज्य की मुख्यमन्त्री भी बनी। लेकिन दलित राजनीति में यह हुआ कि नेता लोग अपनी सत्ता के चक्कर में दलितों से दूर होते गये और सत्ता से सिमटकर रह गये, जन जुड़ाव को नहीं संभाल पाये। राजनीति के मकड़जाल में दलित चेतना के मुद्दे गोण हो गये और केवल राजनीति ही रह गयी।

दूसरा यह भी हुआ कि दलितों को यह उम्मीद थी कि दलितों के हाथ में यदि सत्ता आती है तो दलितों को मुक्ति मिल सकती है और जाति व्यवस्था भी कमजोर

पड़ जायेगी। लेकिन सच्चाई कुछ और है जिसको जे.एच. हट्टन ने लिखा है कि— "अस्पृश्यता के विचार जो अतीत में जाति प्रथा पर छाये हुये थे, कुछ ढीले पड़ जाते हैं, किन्तु उसके साथ ही राजनीति में जातिवाद की लहर पहले से मजबूत हो जाती है।"[14]

दलितों से चाहे वो किसी भी राजनैतिक दल में क्यों ना हो, उन्हें कम से कम दलित मुद्दों पर एकजुट होना चाहिए। दलितों को दलों से भिन्न 'कॉमन प्लेटफार्म फॉर दलित' बनाना चाहिए, जिसमें पिछड़ों को भी साथ लेना आवश्यक होगा, क्योंकि लोकतन्त्र लोगों की ताकत को सलाम करता है। दलितों–पिछड़ों का गठजोड़ लोगों की ताकत का प्रतीक है। इस ताकत के आधर पर यह बहुसंख्यक समाज भारतीय राजनीति में अपनी भूमिका का निर्वाह कर पाएगा। साथ ही साथ पिछड़े समाज व्यवस्था में दलितों और पिछड़ी जातियों को जाति और उपजाति के विचार को समाप्त कर एक गठजोड़ की बात सोचनी चाहिए। यह जातियों को बांटने के लिए ब्राह्मणवादी द्वारा प्रयोग किये गए वैचारिक श है जैसे अंग्रेजों 'फूट डालो और शासन करो की नीति' का प्रयोग किया था। इसी प्रकार ब्राह्मणवादी विचार इन दलित–पिछड़ी जातियों को विभाजित करने और उनमें असमानता के विचारों को पैदा करने का सदैव प्रयास करता है।[15]

(ग) आर्थिक प्रवृत्तियाँ

दलित चेतना एवं दलित मुक्ति में आर्थिक समस्या भी बहुत बड़ी है। मार्क्सवादी विद्वान यह मानते हैं कि दलितों की समस्या आर्थिक समस्या है। इसके अनुसार यदि दलितों की आर्थिक स्थिति सुधार दी जाये तो दलितों के साथ किया

14. भारत में जाति प्रथा — जे. एच. हट्टन भूमिका से
15. दलित अस्मिता की राजनीति — प्रवेश कुमार, पृ. 154

जाने वाला भेदभाव, छुआछूत अपने आप खत्म हो जायेगा। हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था के कारण श्रमिक वर्ग भी दो प्रकार के है, दलित वर्ग के श्रमिक, दूसरा उच्च वर्ग के श्रमिक। दलित वर्ग के श्रमिक सर्वाधिक शोषित और गरीब है, क्योंकि दलितों को कम मजदूरी पर भी रख लिया जाता है। जहाँ पर उच्च वर्ग का मजदूर, दलित वर्ग के मजदूरों से भेदभाव करता है। दोनों का कार्य समान होते हुए भी दलित वर्ग के मजदूर को सामाजिक स्तर पर भेदभाव और अपमान का शिकार होना पड़ता है, जबकि सवर्ण वर्ग के मजदूर के साथ यह भेदभाव नहीं होता है। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि भारत में श्रम का विभाजन नहीं है, श्रमिकों का विभाजन है। दलित वर्ग के श्रमिकों के लिए अलग कार्य है वे उन्हें करने ही पडेंगे—

गाँव दर गाँव, ढोर चराने वाले,
तिलों कोक पेलकर, तेल बनाने वाले

सिर पर दुनिया का गू-मूत उठाने वाले,
बलशाली हाथों से झाड़ू ले कूड़ा हटाने वाले,

सदियों से गाँव की पहरेदारी करने वाले,
मरे ढोरों की खाल खींचने वाले,

चमड़े को गाँठकर जूता बनाने वाले,
पत्थरों को गढ़कर भगवान बनाने वाले।[16]

16. नीच, अछूत हरिजन न हो तो — अशोक भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ — केवल भारती, पृ. 347-48

कवि अशोक भारती ने दलितों के जो कार्य है उनको अपनी कविता के माध्यम से बताया है कि सदियों से दलितों को यह कार्य करने के लिए मजबूर किया जाता है। सवाल यह भी है कि यदि कोई दलित अपना परम्परागत व्यवसाय छोड़कर दूसरा व्यवसाय करने लगे और अपनी आर्थिक स्थिति सवर्ण वर्ग के लोगों जैसी बना ले तो क्या उसके साथ भी वही व्यवहार घृणा, भेदभाव का बर्ताव किया जायेगा। यदि कोई दलित अपना पैतृक व्यवसाय छोड़ दे तो भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है।

जैसा कि जे.एच. हट्टन ने लिखा है कि "अक्सर ये तर्क दिया जाता है कि अस्पृश्यता का सम्बन्ध पेशे से है। अतः यदि कोई अस्पृश्य व्यक्ति या जाति अपना गन्दा पेशा छोड़ दे तो स्पृश्य हो जाती है। शाब्दिक अर्थों में तो यह सही है किन्तु नैतिक मायनों में यह सही नहीं है, क्योंकि कुछ हरिजनों ने तो तीन पीढ़ियों से अपना पुश्तैनी पेशा छोड़ रखा है, किन्तु उन्हें अभी तक सभ्य समाज के बाहर ही रखा गया है।"[17]

इससे यह स्पष्ट होता है कि दलितों की समस्या मुख्य रूप से सामाजिक समस्या है और यह हिन्दू समाज व्यवस्था है। हिन्दू समाज में उच्च वर्ग के लोग यह नहीं मानते कि दलित भी अच्छे होते हैं, इन्सान होते हैं। सामाजिक समस्या के साथ दलितों की समस्या धार्मिक है।

कंवल भारती ने लिखा है कि "ब्राह्मण उच्च है तो दलित नीच माना जाता है यह धर्म की स्थिति है। इसलिए इस धार्मिक व्यवस्था से लड़े बिना आर्थिक वर्ण दृष्टिकोण से दलित समस्या को हल नहीं किया जा सकता है।"[18]

---

17. भारत में जाति प्रथा — जे. एच. हट्टन, पृ. 187
18. दलित विमर्श की भूमिका — कंवल भारती, पृ. 23

इतना स्पष्ट है कि दलितों की मुख्य समस्या सामाजिक व धार्मिक है इसके बाद में आर्थिक समस्या।

अर्थ को मेहनत करके भी प्राप्त किया जा सकता है लेकिन सामाजिक बराबरी को मेहनत से प्राप्त नहीं किया जा सकता है उसके लिए आन्दोलन चलाना ही पड़ेगा, लड़ाई लड़नी ही पड़ेगी।

दलितों के साथ किए जा रहे इस भेदभाव को आज भी देखा जा सकता है। इसका एक उदाहरण दलितों को आरक्षण का लाभ हुआ है। ऊँचे पदों पर पहुँचे है उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हुई है लेकिन गाँव देहात में अभी भी लोग इनको सामाजिक स्तर पर बराबरी का दर्जा नहीं देते हैं। मनु भण्डारी ने अपने एक साक्षात्कार में कहा है "किसी एक लड़की ने जिज्ञासावश ऑफिसर के बारे में कहा है कि इन्होंने तो सरनेम लगा ही नहीं रखा, बाहर साफा बांधे स्टूल पर बैठे चपरासी ने यह सुनते ही जिस हिकारत से कहा 'अरे, कैसे लगायेगा सरनेम...मीणा जी है' ओहदे में चपरासी पर अपने बॉस कलेक्टर के लिए मन में ऐसी हिकारत सिर्फ इसलिए कि वह मीणा है।"[19]

गाँव में बैठे लोगों की यह मानसिकता शिक्षा के माध्यम से ही खत्म हो सकती है दूसरी बात यह है कि दलितों पर जिस व्यवस्था ने पढ़ने पर रोक लगा रखी थी, उसको तोड़ने व खत्म करने के लिए शिक्षा का प्रसार होना जरूरी है, ज्ञान की सत्ता की बात आज उत्तर आधुनिकता की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। शिक्षा के माध्यम से दलितों के जीवन में जो अन्धेरा छाया हुआ है, वह दूर होगा और दलित समुदाय के लोग शोषण से बच सकते हैं।

---

19. शब्द संगत, संपादक — इन्दु श्रीवास्तव, ज्योति चावला का मन्नू भण्डारी से लिया गया साक्षात्कार, पृ. 12

दलितों के सन्दर्भ में यह भी कहा जाता है, कि अब उन्हें कानूनी अधिकार मिल गया है और उस कानून के जरिये दलित व्यक्ति अपने को शोषण से बचा सकता है। संविधान ने जो अधिकार दिये हैं उनके कारण दलितों में सामाजिक स्तर पर सजगता बढ़ी है लेकिन सामाजिक स्तर पर उनका स्तर ऊँचा नहीं हो पाया है। भारतीय हिन्दू धर्मशा में प्रमुख ग्रन्थ 'मनुस्मृति' में शूद्रों के बारे में कहा है कि शूद्रों को धन-संचय और धन जुटाना ही नहीं चाहिए और अन्य वर्ण के लोग भले ही कितना भी धन जुटा लें लेकिन यह अधिकार दलित समाज को मनु महाराज नहीं देना चाहते।

वे किसी भी तरह से शूद्र समाज को खुशहाल देखना ही नहीं चाहते थे, वे तो इसे वंचित, उत्पीड़ित और शोषित ही बनाये रखना चाहते हैं। यह बात उनकी सही है कि पैसा होने से बुद्धि नष्ट हो जाती है लेकिन यह किसने सिद्ध कर दिखाया कि यह द्विज वर्ग पर लागू नहीं होती। जो बात सार्वभौम सत्य है वह सभी जगह स्वीकार्य है लेकिन इन बातों को मापने के लिए कोई निश्चित पैमाना नहीं है। दूसरा यह कि क्या ब्राह्मणों और अन्य वर्णों के धन-संचय से दलितों को कष्ट नहीं पहुँचता? फिर यह सब व्यर्थ के उपदेश सिर्फ दलितों पर ही भारी क्यों पड़ते हैं? सबको समझने के लिए मनु का यह श्लोक देखा जा सकता है—

शक्तिनापि हि शूद्रेण न कार्योधनसंचयः।
शूद्रों हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते॥[20]

अर्थात् शूद्र को सामर्थ्य रखने पर धन संचय में नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि धन के आते ही शूद्र की बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह ब्राह्मणों से द्रोह करने लगता है, जिसके फलस्वरूप उसका और अधिक अधःपतन होने लगता है।

---

20. मनुस्मृति, 10/126/473

इसलिए बड़ी साजिश के तहत् दलितों की सम्पत्ति को बार-बार बेदखल कर दिया गया। उनकी जर, जरा, और जमीन पर कर्ज देकर अन्य वर्णों के लोगों ने बार-बार इस मामले में हस्तक्षेप कर रहे हैं। इसको महात्मा फूले ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

शूद्र की मृत्यु के क्षण में ब्राह्मण, बैद, पण्डित व पुरोहित बनकर उसकी औरत से किस प्रकार क्रूरता करते हैं—

"प्राण पखेरू उड़ गया। मौका जान गया।
भड़भड़ा पुराण पढ़ गया।
दान-धर्म माँगना शुरू किया।"[21]

इस लूट में ब्राह्मण कतई संवेदनशील नहीं होता। शूद्रों के घरों में शोक संतप्त होने पर भी वह उनसे लूटने की कोशिश में रहता है। इसीलिए ब्राह्मण के लिए कहा जाता है इससे बढ़कर कोई नास्तिक नहीं होता। वह मृत्यु, जन्म, रोग, शोक और न जाने ऐसे-वैसे कितने ही अवसरों पर संस्कारों के नाम लूट ही तो करता है। महात्मा फूले ने इसका एक उदाहरण दिया है। वह इस प्रकार है-

"पण्डित भया साहूकार।
शूद्र कर्जदार।
कर्ज खेत के नाम किया।
भोजन जाति को खिलाया
थोड़े दिन में ब्याज कर्ज में।
गिरवी खाता पूरा नया किया।
भिरासी पण्डित वारिस हुआ।"[22]

---

21. महात्मा फूले, र. भाग - 1/113
22. महात्मा फूले, र. भाग - 1/116

यह सच कहा जाता है कि पैसा आदमी में सामन्ती भाव जगा देता है। जात-पांत होने पर भी पैसा दो व्यक्तियों में अन्तर पैदा कर देता है। इसलिए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दलितों की निरीहता का कारण अर्थाभाव ही सबसे मोटा कारण है। और दलित समाज दीनता और दासता के पीछे आर्थिक संकट से हमेशा ग्रस्त रहना है। इस वर्ग में पैसा कभी भी पानी-सा स्रोत नहीं रहा। इसी के कारण दलित वर्ग का दिमाग रोजमर्रा की समस्याओं से बाहर सोच ही नहीं सकता। अपनी दिनचर्या को ठीक से निष्पादन में ही उनकी सम्पूर्ण शक्ति जाया होती रहती है। इस वर्ग के लोगों के पास सुदृढ़ आर्थिक स्थिति नहीं होने के कारण रोज नया कुआँ खोदते हैं और अपनी प्यास बुझाते हैं। आर्थिक मामलों में दलित पीड़ा भी असन्तुलित होने पर अन्य वर्णों के लोगों के पास सहायता के लिए पहुँचता है। और वहीं से उसके शोषण और दमन का सिलसिला शुरू हो जाता है। उसे अन्य वर्णों के लोगों से सहायता कम और शोषण और उत्पीड़न अधिक मिलता है।

(घ) धार्मिक प्रवृत्तियाँ

दलित मुक्ति के आन्दोलन में धर्म भी एक बहुत बड़ी बाधा है। हिन्दू धर्म को मानने वाले व्यक्ति को हिन्दू धर्म की मान्यताएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ आदि माननी पड़ेगी। हिन्दू धर्म में दलित के लिए यह कार्य निर्धारित किया है दलित समाज के व्यक्ति का कर्म ब्राह्मण की सेवा करना है। ब्राह्मण दलितों के सुख की कामना के लिए ईश्वर से प्रार्थना करेगा। हिन्दू धर्म में धार्मिक कर्मकाण्ड पर अत्यधिक जोर दिया गया है। दलितों को धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन वाचन व श्रवण पर निषेध है, पूजा, पाठ व मन्दिर में प्रवेश करने पर निषेध है। दलितों को उच्च वर्ग के लोगों ने भी मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया। कभी उस ईश्वर को देखने तक नहीं दिया जिसके नाम पर

ब्राह्मण दलितों का शोषण करता आया है। दलित साहित्य एवं दलित लेखन हिन्दू धर्म के जितने भी पाखण्ड है उनको नकार कर मनुष्य को धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों आदि से मुक्ति दिलाता है।

"बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर ने मन्दिर में प्रवेश के लिए एक बहुत बड़ा आन्दोलन चलाया और दलितों को मन्दिरों में प्रवेश दिलाया। बाबासाहब ने हिन्दूओं को मन्दिरों के इस मिथक को तोड़ा कि यदि कोई दलित मन्दिर में प्रवेश कर जाएगा तो वह मन्दिर अपवित्र हो जायेगा। दूसरी बात यह कि आगे चलकर स्वयं डॉ. अम्बेडकर अपना धर्म छोड़कर बौद्ध बन गये। उन्होंने कहा कि मेरा जन्म हिन्दू धर्म में हुआ यह मेरे हाथ में नहीं था। लेकिन मैं हिन्दू होकर नहीं मरूँगा।"[23]

हिन्दू होना किसी के हाथ में नहीं हैं। हिन्दू धर्म एक जेल हैं जिसमें से निकलना मुश्किल है। दलित लेखन एवं दलित साहित्य तो धर्म के नाम पर जितने भी पाखण्ड होते हैं, उन सबको नकारता है। दलित लेखन एवं दलित साहित्य ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार कराता है। मानन है कि यदि ईश्वर है तो दलितों या गरीब से गरीब का धर्म के नाम पर अधिक शोषण क्यों होता है, जबकि ईश्वर को तो दिनों का दिन कहा गया है, लेकिन धर्म के ठेकेदारों ने ये कहा कि बौद्ध धर्म भी तो हिन्दू धर्म से ही तो बना हैं, धर्म परिवर्तन से कोई फायदा वैसे दलितों को नहीं हुआ। धर्मान्तरण तो एक जेल से निकालकर दूसरी जेल में जमाना है। जैसे कि मराठी कवि ने लिखा हैं—

"और उसे पश्चात क्या हुआ
हम सब अन्दर की जेल से छूटकर
बाहर की जेल में आ गये

---

23. धर्मान्तरण, लोकनाथ, यशवन्त, दलित निर्वाचित कविताएँ — कंवल भारती – पृ. 347

धर्म के बारे में भी लिखा है
पालतू कुत्ते जैसे धर्म को सहलाते–सहलाते
कब हाथ में आ गया तलवार
पता ही नहीं चला।" [24]

धर्म परिवर्तन हुआ कि दलितों को एक ही प्रकार की आजादी मिली। लेकिन आजादी आंशिक या अधूरी ही साबित हुई। थोड़ा आत्मसम्मान इससे दलितों को मिला पर इससे वर्ण भेद खत्म नहीं हुआ। क्योकि इस धर्म परिवर्तन से वर्ण भेद करने वाले हिन्दुओं का दिमाग नहीं बदला हिन्दूओं के दिमाग में अभी भी सामाजिक व्यवस्था भरी हुई है जो हिन्दू समाज में बनी हुई है।

भारतीय समाज की सामाजिक संरचना को घोषित करने वाली धार्मिक संहिता, मनुस्मृति में मनु ने कहा है कि ब्राह्मण का जन्म सृष्टि के जन्मदाता और जगतपिता ब्रह्मा के मुख से हुआ है। और क्षत्रियों की उत्पत्ति भुजाओं से और वैश्यों की उत्पत्ति उसकी जंघाओं तथा शूद्रों की उत्पत्ति पैरों से हुई ऐसी घोषणा करती है और उनके सामाजिक दायित्वों का भी निर्धारण करती है। इस पुस्तक में कहा गया है कि भारतीय समाज को चार वर्गों या वर्णों में विभाजित किया गया है। जिसमें चारों वर्णों का अलग–अलग कार्य है उसमें ब्राह्मणों को बौद्धिक कार्य करने वाला, क्षत्रिय देश की रक्षा करने एवं युद्धकला और बाहुबल देश, समाज को सुरक्षा प्रदान करना था। वैश्यों को कृषि और वाणिज्य में दक्ष एवं प्रवीण होकर अर्थव्यवस्था को समुन्नत करेंगे। इन तीनों वर्णों के अलावा चौथा वर्ण शुद्रों का था जिसे कमजोर और अयोग्य सिद्ध करार करके तीनों वर्गों की सेवा का दायित्व निर्धारित किया गया है। इस चौथे

---

24. धर्मान्तरण, लोकनाथ, यशवन्त, दलित निर्वाचित कविताएँ — कंवल भारती – पृ. 348

वर्ण के प्रति मनु में बिल्कुल अपेक्षित अधिकार विहिन करने और सभी प्रकार से वंचित बनाने की घोषणा की है। मनु ने इस विषय पर इस प्रकार कहा है–

"शूद्रं तु कारयेद्दायस्यं क्रीतमक्रीतमेव वा।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ स्वयम्भुवा॥"[25]

इस मनुस्मृति के अनेकानेक श्लोकों से यह तो कोई भी बुद्धिजीवी सहज ही समझ सकता है कि किस प्रकार मनु ने इन श्लोकों की रचना में केवल द्विज वर्ग का ही हित चिन्तन किया है। सारे लाभ की स्थितियों के द्विजों की ही वकालत करती सी दिखती है। अन्य वर्णों के प्रति या तो पूर्वाग्रह होता है या फिर वर्चस्ववादी सोच ही स्पष्ट होती है। इसलिए आधुनिक भारत के निर्माता डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने सबसे पहले मनु द्वारा रचित इस समाज को खण्डित करने वाली पुस्तक का दहन करने के साथ कहा कि किसी व्यक्ति का वांछित धर्म में जन्म लेना उसके हाथ में नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने अन्तिम समय में धर्म परिवर्तन कर लिया और बौद्ध धर्म को स्वीकार लिया। क्योंकि इस धर्म में प्रेम, करुणा और दया, अंहिसा, भ्रातृत्व जैसे उच्च मानवीय मूल्यों से युक्त भाव मौजूद थे। दलितों द्वारा बौद्ध धर्म अपनाने का जो कारण है उसको उचित मानते हुए बाबूराव ने इस विषय पर लिखते हैं—

"हिन्दू धर्म में करुणा, प्रेम, भ्रातृत्व के लिए स्थान न होने के कारण शूद्र-अस्पृश्यों का समाज और साहित्य में स्थान नहीं रहा। परन्तु यदि भगवान बुद्ध के धर्म की लोक-मानसिकता के निर्माण में प्रभावी भूमिका रहती, तो भारतीय पौराणिकता में प्रेम, करुणा भ्रातृत्व भाव की परम्परा भी होती हैं और तब साहित्य में थेर-थेरी गाथाओं को लिया जा सकता है, जिनमें उपेक्षितों का उल्लेख हुआ है।"[26]

---

25. मनुस्मृति, टीकाकरण — वादरायण श्लोक, 412, पृ. 389
26. दलित साहित्य : उद्देश्य और वैचारिकता — बाबूराव बागुल, वसुधा, अंक - 58, पृ. 31

दलितों द्वारा धर्मान्तरण की इस प्रक्रिया से दलितों को कितना लाभ हुआ। शोषण से छुटकारा मिला या नहीं? यह कह पाना बड़ा मुश्किल है मधुमंगेश कर्णिक की कहानी 'धर्म' इस बात को कुछ इस तरह से बयाँ करती हैं—

"बौद्ध हो जाने से क्या फायदा है? क्या फायदा? मराठों और ब्राह्मण की तरह पाक-साफ हो जाते हैं, फिर कोई महारों से नफरत नहीं करता दूर नहीं भागता॥" [27]

ओमप्रकाश वाल्मीकी ने लिखा है कि समय के साथ बदलाव तो आया है लेकिन अभी यह बदलाव दलितों के लिए 'ऊँट के मुह में जीरा' के समान हैं, इस बात की पुष्टि इस बात से हो जाती है—"वक्त बदला है, लेकिन कहीं कुछ है जो सहज नहीं होने देता है। कई विद्वानों से जानना चाहा कि सवर्णों के मन में दलितों शूद्रों के लिए इतनी घृणा क्यों हैं? पेड़-पौधो, पशु-पक्षियों को पूजने वाले हिन्दू दलितों के प्रति इतना असहिष्णु क्यों हैं? आज जाति एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण घटक है।"[28]

दलितों ने धर्म परिवर्तन कर लिया लेकिन दलितों के प्रति सवर्णों की मानसिकता में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनके लिए वे आज भी बौद्ध धर्म को भी अपने हिन्दू धर्म का ही एक अंग मानते हैं। इसलिए धर्मान्तरण से दलितों में रोजी-रोटी ओर छुआछूत, भेदभाव और उनके प्रति अन्य सामाजिकों का नजरिया वही है जो पहले था। रोटी-बेटी का सम्बन्ध आज भी उनके लिए वैसा ही जैसे पहले था।

निष्कर्ष

वर्तमान युग में दलित साहित्य का पर्याप्त सीमा तक इसका प्रचार-प्रसार भी हो रहा है। नये-नये रचनाकार उभरकर सामने आ रहे हैं। आशा है, इनके लेखन में

---

27. समांतर कहानी विशेशांक, 'सारिका' मई 1975, — सं. कमलेश्वर, पृ. 42
28. ओमप्रकाश वाल्मीकी — एक दलित की आत्मकथा, हरिजन से दलित — सं. राजकिशोर, पृ. 25

दलित जीवन के उत्कृष्ट विचार नए-नए रूप में प्रस्तुत होंगे। साहित्यकारों के विचारों से ही हर एक साहित्य की विद्या सुसज्जित हो रही है। आत्मकथा, उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, समीक्षा, व्यंग्य, पत्रकारिता कोई भी विद्या साहित्य से अनछुई नहीं रह पाई है। हर एक विद्या ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान स्थापित किया है और यह हिन्दी साहित्य की एक अनमोल उपलब्धि है।

21वीं सदी के साहित्यकारों ने साहित्यिक कार्य के साथ-ही-साथ अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता भी निभायी है। सामाजिक आन्दोलन, सामाजिक संगठन, दलित जीवन, उनका शोषण, उनकी समस्यायें, नयी समाज व्यवस्था, नयी जातीयता, धर्म-परिवर्तन, जाति-धर्म के साथ राजनीतिक सम्बन्ध ईसाईयों के धर्म प्रसार नीति, हरिजन नेताओं की नई मानसिकता, आरक्षण से लाभान्वित दलित, उच्च शिक्षा व्यवस्था में दलितों का होने वाला शोषण आदि पर उन्होंने प्रकाश डाला है। सरकारी सुधार नीति से दलित जीवन विकसित हो रहा है। शिक्षा सुविधा से जीवन स्तर ऊँचा हो रहा है। परन्तु सभी उससे लाभ नहीं उठा रहे हैं यही आज की पीड़ा है। दलित उद्धार के लिए एकमात्र साधन शिक्षा प्रसार है। उसमें भेदाभेद हो तो 'एकलव्य' के समान दलित युवा शोषित रहेगा। 'मुक्तिपर्व', 'पठार पर कोहरा', 'सुअरदान' आदि उपन्यासों से दलितों में चेतना जागृत हो रही है, उनमें संगठन दिखाई दे रहा है। तो 'आज बाजार बन्द है', 'जख्म हमारे', 'दोहरा अभिशाप' आदि उपन्यासों में दलित संगठन, नारी संगठन आदि के माध्यम से परिवर्तित, चेतित दलित जीवन को उजागर किया है। धर्म जाति के आधार पर लिखा गया 'हिन्दू' जिसमें दलितों ने उच्च-नीचता, भेदभाव की भावना बढ़ रही है, जिससे दलितों में टकराव बढ़ रहा है, सामाजिक एकता को खतरा महसूस होने लगा है, जिसे मिटाने का प्रयास किया गया है।

हिन्दी के दलित कथा साहित्य अर्थात् कहानी, उपन्यास और आत्मकथाओं में सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार का स्वरूप प्रखरता से व्यक्त हुआ है। जाति-भेद, असमानता, अपमान और उत्पीड़न की समस्त घटनाएँ सामाजिक हैं, जो दलित कथा-साहित्य में यथास्थान प्रतिबिम्बित होती रही हैं। कथा-साहित्य में आए सांस्कृतिक स्वरूप का अध्ययन करते समय हमारी पहली समस्या या जिज्ञासा यह है कि पहले हम यह जानें कि संस्कृति क्या है उस संस्कृति के आयाम क्या हैं? भारतीय संस्कृति का समग्रता में वर्तमान रूप क्या है? आखिर दलित संस्कृति है क्या? क्या संस्कृतियों में ऐसा भेद सम्भव भी है अथवा नहीं? क्या अलग जातियों व धार्मिक समुदायों की सांस्कृतिक विविधताओं के इतिहास की निरन्तरता वर्तमान में मौजूद है?

पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने संस्कृति के विषय में लिखा है—

"संस्कृति है क्या? शब्दकोष उलटने पर इसकी अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं।" एक बड़े लेखक का कहना है कि संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है। एक दूसरी परिभाषा में यह कहा गया है कि—संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है। यह मन, आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम हो जाता है, जो बुनियादी और अन्तर्राष्ट्रीय है। फिर, संस्कृति के कुछ राष्ट्रीय पहलू भी होते हैं। संस्कृति को समझे बगैर देश को पूर्णता में नहीं समझा जा सकता उसे समझने के लिए संस्कृति की अनिवार्यता विचारणीय है।

❑

तृतीय अध्याय

हिन्दी कथा–साहित्य में दलित चेतना का सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार का स्वरूप

(क) दलित चेतना व वर्ण व्यवस्था

दरअसल भारतीय सामाजिक व्यवस्था (वर्ण व्यवस्था) अथवा सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में हमने कुछ चीजों को उत्कृष्ट और पवित्र (चनतम) बना रखा हैं, चाहे वह ज्ञान के केन्द्र शिक्षण संस्थान हो या जीवन को संचालित करने वाले 'पानी' के केन्द्र, जैसे तालाब, कुएँ, नदी के घाट आदि। इसी तरह हमने वेद, पुराण, गीता, महाभारत और रामचरितमानस जैसी पुस्तकों को पवित्र और उत्कृष्ट घोषित कर रखा है। जिससे कि समाज का दलित तबका उन्हें स्पर्श न कर सके और इस नाते पारम्परिक ज्ञान से वंचित रह जाए। जाहिर है, जब उसके पास ज्ञान ही न होगा तो वह कैसे विकास की प्रक्रिया से जुड़ेगा? ज्ञान के अभाव में ही उनका आर्थिक शोषण और सामाजिक रूप से बहिष्कार होता है।

दलित कविता दलित समाज में जागृति पैदा करते हुए सवर्ण समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है। उपरोक्त कवियों में दलित चेतना का स्वर सुनाई पड़ता है। डॉ. अभय कुमार द्वारा रचित 'धन्य धन्य जो कलियुग आया' में संग्रहीत 'दलित चेतना' कविता में यह स्वर सुनाई पड़ता है—

"दलित चेतना जाग उठी। गाँवों की सूनी गलियों में।
धूल बनी बारूद वहाँ की । मत छेड़ो मस्तानों को।"[1]

दलित साहित्य को गैर दलितों से स्वीकृति प्राप्त करने का संघर्ष लम्बे समय से इतिहास में चलता है। उसमें दलितों के पूर्वजों सन्तों और समाज सुधारकों ने अपने ईमानदार सृजन और सरल स्वभाव के साथ समाज की असीम सेवा की किन्तु वे हाशिए के लेखकों द्वारा, ऐसे लेखकों द्वारा जो कथित उच्च जातियों में जन्मे और संकुचित अनुभवों के आधार पर छाए रहे, छल, षड्यंत्र और राजसत्ता के माध्यम से मुख्यधारा से हटा दिए गए और खुद चन्द सवर्णों ने मुख्यधारा का साहित्यकार स्वयं को घोषित कर दिया। इस तथाकथित मुख्यधारा में भी मुख्य रहा वर्ण-व्यवस्था समर्थक ब्राह्मणी साहित्य, जिसने वर्ण व्यवस्था में तय जन्मना सर्वोच्चता ओर वरिष्ठता का स्थान प्राप्त कर लिया। बुद्धिबल में वर्ण-निष्ठ ब्राह्मण सदैव कमजोर रहा है। ब्राह्मण ने ही वर्ण-व्यवस्था के तहत समाज को ज्ञान सम्पन्न करने का दायित्व अपने ऊपर लिया था परन्तु वह असफल रहा, किन्तु कलाबाजी में हमेशा आगे रहा। इस कारण वेदों, महाभारत, रामायण और तमाम महत्त्वपूर्ण कृतियों का सृजक न होकर भी इनसे इन कृतियों का उपयोग वर्ण-व्यवस्था के अनुकूल किया। व्यापक समाजहित में ज्ञान की दृष्टि से सकारात्मक योगदान करने में वह अक्षम रहा।

श्री ओमप्रकाश वाल्मीकी वर्ण-व्यवस्था पर भी करारी चोट करते हैं—

"कभी सोचा है।
गन्दे नाले के किनारे बसे
वर्ण व्यवस्था के मारे लोग
इस तरह क्यों जीते हैं?

---

1. 21वीं सदी के कथा-साहित्य में दलित चेतना — डॉ. सुनीता कावल्ले, पृ. 19

तुम पराये क्यों लगते हो उन्हें,
कभी सोचा है?" [2]

माताप्रसाद की जाति व्यवस्था के विरुद्ध अत्यन्त साधारण शब्दों में बहुत बड़ी बात कह जाते हैं–

"जाति–वर्ण का गर्व छोड़, हम सबको साथ न लाये हैं
तर्कहीन, झूठी बातों को अब तक गले लगाये हैं।"[3]

सामाजिक परिवर्तन की विचारधारा के विकास का साहित्यिक सौन्दर्य, कहानियों, निबन्धों, यात्रा वृतान्तों, लघुकथाओं, आत्मकथाओं, उपन्यासों में भी दृष्टव्य है। बिपिन बिहार की कहानी ब्राह्मण देवता के पात्र नरेश का कथन "तो क्या मेरा क्वार्टर मनोरंजन घर है। मैं दलित हूँ, तो क्या मेरे घर की औरतें तुम ब्राह्मणों का मनोरंजन करेगी।" शिवमूर्ती के उपन्यास 'त्रिशुल' के दलित विद्रोही पात्र गायक पाले का कथन, "ऐसे रामराज्य से भगवान बचाये जिसमें ब्राह्मण के फलने फूलने के लिए शूद्र का सिर काटा जाना अनिवार्य होता है।" इसलिए रमणिका गुप्ता की कहानी 'बहू जूठाई' के पात्र फुलमतिया के भाई व अन्य दलितों के सामूहिक कथन "नहीं जाएगी डोली ठाकुर के यहाँ, जिससे ब्याही है डोली उसी के द्वार लगेगी।"

जब दलित साहित्य के सबसे अधिक समर्थ समझे जाने वाले रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकी यह कहते हैं कि "वर्ण व्यवस्था से उपजी घोर अमानवीयता, स्वतन्त्रता समता विरोधी सामाजिक अलगाव की पक्षधर सोच को परिवर्तित कर बदलाव की प्रक्रिया को तेज करना दलित साहित्य की मूलभूत संवेदना है।"[4] यथा

---

2. दलित साहित्य दशा और दिशा — माताप्रसाद, पृ. 143
3. दलित दशा और दिशा — माताप्रसाद, पृ. 144
4. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श — देवेन्द्र चौबे, पृ. 56

इसी क्रम में उनका यह स्वीकारना कि 'अम्बेडकर और ज्योतिबा फूले की जीवन दृष्टि' दलित साहित्य की ऊर्जा है, तो यह मान लेना पड़ता है कि दलित जीवन से जुड़ी समस्याओं, विचारों और पीड़ा की वास्तविक अभिव्यक्ति वही कर सकता है जो स्वयं दलित है और इस सन्दर्भ में मार्क्सवाद अथवा अन्य प्रगतिशील विचारों की तुलना में ज्योतिबा फूले और डॉ. अम्बेडकर के विचार और जीवन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकी यह कहते हैं कि "वर्ण-व्यवस्था से उपजी घोर अमानवीयता, स्वतन्त्रता समता विरोधी सामाजिक अलगाव की पक्षधर सोच को परिवर्तित कर बदलाव की प्रक्रिया को तेज करना" दलित और दलित साहित्य की मूलभूत संवेदना है तथा इसी क्रम में उनका यह स्वीकारना कि "अम्बेडकर और ज्योतिबा फूले की जीवन दृष्टि दलित साहित्य और दलितों की ऊर्जा हैं" तो यह मान लेना पड़ता है कि वामपंथी आन्दोलन से जुड़ी विचारधाराओं को छोड़कर अन्य गैर-दलित आधुनिक विचारधाराएँ भी भारतीय समाज में शोषण और दमन की जिंदगी जी रहे हैं दलितों की स्वाधीनता के सवाल को विस्मृत कर देती है। समाज में साम्यवाद का प्रचार-प्रसार कराना और मजबूत बनाना मार्क्सवाद अथवा इस जैसी प्रगतिशील विचारधाराओं की पहली शर्त है, परन्तु भारतीय समाज के संदर्भ में खासकर वर्ण व्यवस्था में ये विचारधाराएँ भी एक निश्चित सीमा के बाद कोई मदद नहीं कर पाती।

यद्यपि ओमप्रकाश वाल्मीकी जैसे दलित लेखकों का भी मानना है कि मार्क्सवादी विचार और आन्दोलन ने दुनिया में जबर्दस्त बदलाव प्रक्रिया तेज की है बल्कि मनुष्य को अधिक चैतन्य, जागरूक और क्रान्तिकारी बना है, लेकिन इन्हें दिक्कत वहाँ होती है, जब भारतीय सन्दर्भ में वामपंथी विद्वान कार्यकर्त्ता और लेखक

वर्ग चेतना के साथ संभावित सम्बन्धों की उपेक्षा करते हैं। इसलिए ओमप्रकाश वाल्मीकी जैसे दलित लेखक भारत के वामपंथी आन्दोलन पर आरोप लगाते हुए स्पष्टतः कहते हैं कि 'इस आन्दोलन ने जाति भेद को अनदेखा ही नहीं बल्कि अपने किसी दलित नेतृत्व को उभरने नहीं दिया।'[5] कहना न होगा कि स्वाधीनता के बाद और सातवें दशक में हुए नक्सलवादी आन्दोलन के दौरान गाँवों में जो कृषि-सम्बन्धी संघर्ष हुए उनमें मारे गए अधिकांश मजदूर दलित जाति से ही थे।

"वर्ण व्यवस्था के कारण ही हमारा समाज ऊँच नीच की श्रेणियों में बंट गया है। आज वर्णभेद के कारण शोषण के विभिन्न रूप समाज में पनपे है। वर्ण व्यवस्था के रूढ़िवादी और परम्परागत रूप से समाज के ऊँच-नीच, जाति-भेद, छुआछूत जैसी अनेक बुराइयों को जन्म दिया है।"[6]

भारतीय समाज को समझने के लिए विचारकों ने वर्ण-व्यवस्था को एक महत्त्वपूर्ण कारक माना हैं कि समाज को समझने की इस प्रविधि में प्रतिपक्ष (हाशिये का समाज) की बात कभी सुनी ही नहीं गई। दलित कहानियाँ सामाजिक इतिहास लेखन की प्रक्रिया को समझने और उसके सन्तुलित विकास के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत सामग्री प्रदान करती है। उदाहरण के लिए यह विवाह संस्था का इतिहास लिखना हो तो जय प्रकाश कर्दम की नो बार इस तथ्य को दर्शाती है कि तमाम प्रगतिशील और खुलेपन के बावजूद यह वर्ण-व्यवस्था ही है जो "विवाद" की नियति को तय करती है, यह मनुष्य को कई श्रेणियों में बाँटती है। उन श्रेणियों के अन्दर अनेक उप-श्रेणियाँ निर्मित करती है तथा सामाजिक सम्बन्धों के बीच दरार पैदा करती है। नो बार की विशिष्टता यही है कि यह तथाकथित प्रगतिशील समाज की इस छद्म नैतिकता को

---

5. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श — देवेन्द्र चौबे, पृ. 162
6. दलित कथा : साहित्य में दलित विमर्श — डॉ. पण्डित बन्ने, पृ. 60

बेनकाब करती है। जो विज्ञापन में तो लिखता है, 'हाइली एजुकेटेड प्रोग्रेसिव फैमिली, कास्ट नो बार—पर जब शादी की बात आती है तो यह कहने से नहीं हिचकता है कि "आखिर नो बार" का यह मतलब तो नहीं कि किसी चमार-चूहड़े के साथ...।[7]

अर्थात् विवाह तो होगा, पर उस वर्ण-व्यवस्था की संरचना में ही और उसमें भी उसके एक मुख्य पर निम्नतर हिस्से शूद्र को छोड़कर। अर्थात् समाज में वर्ण-व्यवस्था का विरोध करना चाहिए। समाज में पढ़े-लिखे लोग भी छुआछूत, ऊँच-नीच का भेद-भाव करते हैं। वर्तमान में सामाजिक स्थिति धीरे-धीरे सुधरती जा रही है। अधिक से अधिक लड़के-लड़कियों को पढ़ाना चाहिए जिससे जाति-वर्ण, छुआछूत दलित आदि समस्याएँ दूर होती चली जाएगी।

(ख) दलित चेतना व अन्धविश्वास

दलित लेखकों में बढ़ती अम्बेडकरी चेतना के विस्तार ने उन्हें यह महसूस करा दिया है कि उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति सोचनीय है। इसका मुख्य कारण है उनका ब्राह्मणवादी धर्म-संस्कृति में विश्वास तथा अन्धानुकरण। आज के वैज्ञानिक युग में जन्म-मरण, विवाहों में होने वाली फिजूल खर्चियाँ तथा धर्म, ईश्वर के नाम पर तमाम अन्धविश्वासों, रूढ़ियो इत्यादि की परम्परागत सामाजिक रूढ़ मान्यताओं की लीक पीटने की न तो सार्थकता है न ही आवश्यकता।

यह दलित कहानियों तथा उपन्यासों का मूल तत्व भी हैं। कुछ दलित कहानियों में धर्म-संस्कृति से विद्रोह प्रत्यक्षतः प्रकट होता है। किन्तु अफसोस यह है कि ऐसी कहानियों की संख्या बहुत सीमित है। मोहनदास नैमिशराय ने 'कर्ज'[8] कहानी

---

7. आधुनिक साहित्य में दलित-विमर्श — देवेन्द्र चौबे, पृ. 117
8. मोहनदास नैमिशराय — कर्ज, बहुजन संघर्ष, जून 1981

में दलितों को मृत्युभोज और कथित धार्मिक संस्कारों के प्रति विद्रोही तथा मृत्यु के बाद किए जाने वाले भोज की परम्परा को तोड़ते हुए दिखाया गया है। कहानी का नायक अशोक जब अपने मृत पिता के मृत्युभोज को न करने का निश्चय कर लेता है तो गाँव का महाजन अपने कारिंदे द्वारा उसको बुलावा भेजता है जहाँ गाँव का मुखिया, प्रधान, सरपंच और दलित पंचायत के लिए एकत्र थे। सब के पूछने व व्यंग्य करने पर अशोक कहता है—"ताऊजी, जरा मुझे बताइए कि क्या कर्ज लेकर यह सब करना उचित हैं जब मेरे घर में खाने को न हो और मैं सारे गाँव के लोगों को न्यौता दूँ।"[9]

इसी तरह डॉ. कुसुम 'वियोगी' की कहानी 'मुंडन'[10] में सदियों से चली आ रही धार्मिक अंधविश्वास की प्रतीक मुंडन परम्परा की निर्वाह एक धार्मिक स्थल गंगा घाट पर कराने का विरोध किया गया है। कहानी के नायक दिनेश को अपनी माँ और पत्नी के विरोध के बावजूद मुंडन परम्परा को तोड़ते हुए दिखाया गया है, किन्तु दिनेश की माँ और पत्नी को भय है कि बच्ची का मुंडन संस्कार का परम्परागत निर्वाह यदि नहीं हुआ तो कुछ बुरा हो जायेगा। दिनेश की माँ उसी बुआ का उदाहरण देकर सचेत करती है—"तुझे मालूम है? तेरी दादी बताती है कि तेरे दादा ने तेरी बुआ के बाल घर पर ही नाई से उतरवा लिये थे और वो भैंगी हो गई थी।"[11]

दिनेश अन्ततः नाई के पास बच्ची के बाल उतरवाने पहुँच जाता है, लेकिन बाल उतरवाते वक्त बच्चा स्वभावतः रोता-चीखता है तो दिनेश के अन्तः करण में संस्कारगत परम्पराओं का अनायास भय उत्पन्न होने लगता है, "ज्यों ही नाई ने

---

9. मोहनदास नैमिशराय — कर्ज, बहुजन संघर्ष, जून 1981
10. डॉ. कुसुम वियोगी — चार इंच की कमल, पृ. 60
11. डॉ. कुसुम वियोगी — चार इंच की कमल, पृ. 61

उस्तरा चलाया दिनेश का रोम-रोम तर-ब-तर होने लगा। बेटी रो-रोकर दुकान को सिर पर उठाए जा रही थी। देखते ही देखते वह भी पसीने से लथपथ हो चली, सर्दी गर्मी के दिन जो थे।"

"जैसे ही उसे संभाल कर बिठाया, दिनेश का ध्यान बिटिया की आँखों पर और आँखें उसे वैसी ही लगने लगी जैसी उसकी माँ ने उसके जहन में उतारी थी। दिनेश पसीने से बरसात की झोपड़ी-सा चू पड़ा था।"[12]

अजय यतीश की 'भूत'[13] कहानी भी धर्म की आड़ में अन्धविश्वासों का चोला पहना कर शोषण के हथकंडों को चलाने वालों की सूरतें उजागर करती है। कलुप का बेटा बीमार हैं। पंचायत बैठती है। पंचायत में पंच अपने-अपने भूत को बंद करके रखने का आदेश देते हैं। कलुप का बेटा तेज बुखार से पीड़ित है वह उसे शहर में और दिखाना चाहता है, किन्तु एक तो अर्थाभाव है, डॉक्टर के लिए फीस नहीं है, फिर जंगी नामक पात्र कलुप को ऐसा करने से रोक कर कहता है कि मैं तुम्हारी मदद करूँगा, बढ़िया ओझा लाऊँगा। जंगी व ओझा द्वारा रात के अंधेरे में कलुप व उसकी पत्नी चमेलवा को शराब पिलाई जाती है और कबूतरों की बलि दी जाती है। कबूतरों का मांस खाकर व शराब पीकर वे बेहोश चमेलवा के साथ बलात्कार करते हैं और रात के अंधेरे में भाग जाते हैं। इस प्रकार यह कहानी भी समाज में स्थापित अशिक्षा, अन्धश्रद्धा और अन्धविश्वास को चित्रित करती है। नायक-नायिका लुट-पिट जाते हैं। बेहतर होता पात्रों में समय पर ही जागृति आ जाती। अन्धविश्वासों के प्रति मोह भंग होते दिखाया जाता। यह हम सबकों ज्ञात है कि अभी भी ग्रामीण अशिक्षित लोगों में रूढ़ियाँ, कुरूतियाँ और अन्धविश्वासों की कमी नहीं है। ऐसी स्थिति में चेतनशील

---

12. डॉ. कुसुम वियोगी — चार इंच की कमल, पृ. 64
13. दलित कथा-साहित्य : अवधारणाएँ और विधाएँ — रजत रानी मीनू, पृ. 233

लोगों का दायित्व बनता है कि वे उन्हें उजाले की ओर रास्ता दिखावें। इसी प्रकार रामकुमार करौतिया की 'फुलवा' कहानी के पात्र भूत-प्रेत के अन्धविश्वासों में फंसे हुए है जिसकी परिणति यह होती है कि अन्त में 'फुलवा' की डोली के बजाय अर्थी उठती है।

डॉ. पी. वरुण का उपन्यास 'अमर ज्योति' अन्धविश्वासों के विरुद्ध नई वैज्ञानिक जागृति लाने के उद्देश्य से रचा गया है। उनके मेडिकल डॉक्टर पात्र भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए चुने गए कि वे वैज्ञानिक उपलब्धियों से प्रभावित करते हुए ईश्वर का आडम्बर के रूप में दर्शाएँ। यहाँ उपन्यास में आए दलित आचार्य प्रज्ञानन्द ही कह सकते हैं कि—"वाह रे ईश्वर, यह है तेरी महिमा कि तू अपनी रक्षा चोरों से भी नहीं कर सकता है तो तू दीन-दु:खी की क्या रक्षा करेगा।"[14] अमर-ज्योति के बारे में फ्लैप पर टिप्पणी लिखते हुए प्रशासक ने बताया कि—"लेखक वर्तमान समय (उपन्यास प्रकाशन अवधि में) आयुक्त, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (उत्तर प्रदेश शासन) के पद पर कार्यरत है। इस अवधि में लेखक ने पाया कि जो व्यक्ति जितना अधिक ईश्वरवादी, रूढ़िवादी, भाग्यवादी एवं अन्धविश्वासी है। उतना ही अधिक वह दरिद्र, शोषित एवं दु:खी है। लेखक का विश्वास है कि जब तक इन व्यक्तियों को ईश्वरवाद, रूढ़िवाद तथा अन्धविश्वासों से मुक्ति नहीं दिलाई जाती है, तब तक वे दरिद्रता, शोषण एवं दु:ख से मुक्ति नहीं पा सकते।"[15]

यहाँ लेखक की चिन्ता यह है कि दलितों को सनातन धर्म, ईश्वर और अन्धविश्वासों से मुक्ति दिलाकर विवेकपान बनाना है। उनकी यह चिन्ता भी बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण हैं, किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या केवल ईश्वर और अन्धविश्वासों

14. डॉ. पी. वरुण — अमर ज्योति, पृ. 105
15. डॉ. पी. वरुण — अमर ज्योति, पृ. 105

की मुक्ति से दलित मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होना सम्भव है? यदि ऐसा होता तो सवर्ण ईश्वरवादी प्रमुख रूप से बनिया, ब्राह्मण समाज जितना अधिक आस्तिक है, पूजा पाठ, कर्मकाण्ड में विश्वास करता है उसे गरीब होना चाहिए। जबकि वह उतना ही अधिक सम्पन्न और समृद्ध है दूसरी ओर दलित बौद्ध धर्म अपनाकर अनीश्वरवादी होने के बावजूद अपनी गरीबी दूर नहीं कर पा रहे हैं। यहाँ मेरा आशय यह कदापि नहीं है कि दलित को ईश्वरवादी, रूढ़िवादी और अन्धविश्वास के गर्त में पड़े रहना चाहिए। आवश्यक है कि उन्हें शिक्षा-दीक्षा, रोजी-रोटी के आधार मिले। उन्हें प्राप्त करने के लिए उपन्यास कोई चेतना नहीं जगाता। हाँ, ज्योति के माध्यम से एक झलकी के समान बच्चों की शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश अवश्य डाला गया है। लेखक ने कथा केन्द्रों में जोर इस बात पर दिया है कि ईश्वर मानव-निर्मित हैं अर्थात् ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है। उपन्यासकार दलितों की शिक्षा के प्रचार-प्रसार और आर्थिक सुधार के प्रश्नों पर पात्रों से चर्चा नहीं कराता, अर्थात् वह वस्तु-स्थिति को नहीं दर्शाता। लेखक भौतिक प्रश्नों को नजरअंदाज कर भावनात्मक सवाल उठाकर अमूर्त चर्चा खडी करता है जबकि पेट भरने और बुनियादी जरूरतें पूरी हुए बगैर हम इतने गम्भीर तत्व चिन्तन की उपेक्षा पात्रों से नहीं कर सकते। अभावों में भी बुद्धिजीवी लेखक-विचारक पैदा होते हैं पर वे कम होते हैं और आम नहीं होते। इसका मतलब यह नहीं कि अमर ज्योति उपन्यास महत्त्वहीन है। वह फिर भी गैर-दलितों के दलित विषयक उपन्यासों से बेहतर है। इसका लेखक समस्याओं को समाज के भीतर से देखता है। तर्कशक्ति में वृद्धि करता है, जिसके अभाव में दलितों को ठगा-लूटा जाता है। नायक अमर सांस्कृतिक विद्रोह के विचार प्रकट करता है। वह कहता है—"हिरण घास खाकर जंगल में जिन्दा रहता है और शेर उसी हिरण को मार कर खा जाता है जो निर्दोष है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का खून कर देता है

सिर्फ अपने द्वेष व जलन को शान्त करने के लिए। परन्तु ईश्वर यह सब कुछ देखता रहता है। अगर ईश्वर होता तो कम से कम अपने निर्माण को तो नष्ट होने से बचाता।"[16]

डॉ. अमर वैज्ञानिक विचारों के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को नकारता है। दूसरे शब्दों में, कथाकार पात्रों के माध्यम से अपनी निरीश्वरवादी धारणा को प्रकट करता है। ईश्वर मनुष्य निर्मित है ऐसा उसका अपना विश्वास हैं। इस बात को वह अपने शब्दों में ज्योति को समझना चाहता है, और वह डॉक्टर भी अज्ञानता दर्शाती है। अन्ततः उसे अमर से सहमत होना पड़ता है, अपने ब्राह्मणी संस्कारों के विरुद्ध वह अमर से विवाह करती हैं इस सांस्कृतिक विद्रोह में ज्योति के पिता भी प्रगतिशील बनते हुए स्वेच्छा से अपने ब्राह्मण समाज से विद्रोह करते हैं।

इसी क्रम में पत्थर पूजा के विरोध का भी स्वर उठता हुआ सुनाई पड़ता है। जब दलित (शायद बौद्ध भिक्षु) आचार्य प्रज्ञानंद के प्रवचनों में बुद्धिवादी संस्कृति का यह रूप सामने आता है, तब वह अपने आचार्य प्रज्ञानंद से कहलवाते हैं—"भाइयों, और सुनिये इस बन्दी ईश्वर के कारनामे। वही जब पुजारी जब ईश्वर को खुला छोड़ जाता है जहाँ पर फाटक की व्यवस्था नहीं है तो कुत्ते आकर उस पर पड़ी दही-मिष्ठान को जिह्वा से चाटते हैं और विदाई के समय अपने मूत्र से उसको स्नान कराया जाता है। परन्तु वही पुजारी मनुष्यों को उसी मन्दिर में अपने उपस्थिति में घुसने नहीं देता है। वाह रे ईश्वर! तेरी लीला तू ही समझ सकता है। या फिर वह पुजारी समझता है जो तेरे नाम में अपनी रोजी-रोटी कमाता है और कभी-कभी ब्याज में कुकर्म भी करता है।"[17] उपन्यास ने चित्र तो यथार्थ का ही चित्रित किया है, किन्तु उसे ईश्वर पर अतिशय आक्रोश है इसलिए वह उस पर तथा उसके उपासक पर कटाक्ष भी करता है।

---

16. डॉ. पी. वरुण -अमर ज्योति, पृ. 21
17. डॉ. पी. वरुण — अमर ज्योति, पृ. 27

यहाँ प्रश्न उठता है कि किसी के ईश्वर या उपासक पर व्यंग्य करने का हमें हक भी है या नहीं? दलित समाज में शिक्षा का महत्त्व प्रसारित करता है और अन्धविश्वासों के विरुद्ध चेतना जगाता है। और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने का प्रयास करता है।

(घ) दलित चेतना और मार्क्सवाद

प्रगतिशील साहित्य चिन्तन के भारतीय सन्दर्भ में अनेक मत है। आधुनिक सन्दर्भ में प्रगतिशील चिन्तन मूलतः मार्क्सवाद से ऊर्जा लेता है, जिसका प्रमुख सिद्धान्त वर्गीय अवधारणा है। वह वर्गीय अवधारणा शोषक वर्ग एवं शोषित वर्ग में विभाजित है और यह मानकर चलती है कि अन्य सभी प्रकार के भेद आर्थिक समस्या के दूर होते ही अपने आप समाप्त हो जायेंगे। पिछले कुछ समय से दलित साहित्य और चेतना के प्रति गैर दलित साहित्यकार और चिन्तकों की रुचि में एकाएक वृद्धि हुई है। कल तक उपेक्षा या प्रतिस्पर्द्धी की दृष्टि से देखे जाने वाले दलित लेखकों को आज काफी महत्त्व और सम्मान दिया जा रहा है। उनके साथ घनिष्ठता स्थापित करने के प्रसास हो रहे हैं।

दलित साहित्य में मार्क्सवाद के विरुद्ध अगर सिलसिलेवार एक धारा है तो मार्क्स-अम्बेडकर के विचारों का समन्वय करने वाली दूसरी धारा भी है।

विश्व में मार्क्सवाद की एक वाद, एक राजनीतिक चिन्तन, एक दर्शन के रूप में चर्चा 1848 में कार्ल मार्क्स व फ्रेडरिक एंजेल्स द्वारा तैयार कम्युनिष्ट घोषणा पत्र से हुई, जिसकी 150वीं जयंती 1998 में मनाई गई। लेकिन यहाँ मार्क्सवाद का तात्पर्य एक दर्शन या राजनीतिक चिन्तन रूप में नहीं वरन् साहित्यिक क्षेत्र में मार्क्सवाद के प्रभाव को आंकने व दलित साहित्य और साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में सक्रिय मार्क्सवादी चिन्तन-धारा के परस्पर सम्बन्धों को देखना है।

प्रगतिशील साहित्यकारों के आपसी विवादों के चलते दलित स्त्री एवं उपेक्षित चेतना के सम्बन्ध में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन के संगठित प्रयास प्रगतिशील लेखन संघ की स्थापना (1936) के समय से प्रारम्भ हो गये थे। प्रगतिशील चिन्तक, साहित्यकार, सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ता एवं सामान्य अनुयायी तक सभी दलित, स्त्री एवं उपेक्षित चेतनाओं के लिए संघर्ष करते आ रहे हैं, भले ही दलित एवं स्त्रियों का अलग से उल्लेख न किया हो। भारतीय सन्दर्भ में दलित हर प्रकार की उपेक्षा एवं शोषण के शिकार रहे हैं।

"दलित न मार्क्स के समर्थन में है न विरोध में। मार्क्स का अपना लक्ष्य है और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उनके अपने साधन और सिद्धान्त है, जबकि दलितों का अपना लक्ष्य है और उसकी प्राप्ति के लिए उनके अपने सिद्धान्त है। तथापि, दूसरे विचार और सिद्धान्तों की तुलना में दलितों का मार्क्सवाद के प्रति ज्यादा सकारात्मक दृष्टिकोण रहा।"[18]

मार्क्सवाद के अनुसार आज तक का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है और ये वर्ग उत्पादन सम्बन्धों के कारण निर्मित होते हैं। मार्क्स प्रणीत भौतिकवाद का मानना है कि उत्पादन पद्धति उत्पादक सम्बन्ध और वर्ग कलह के कारण सामाजिक स्थितियों में अन्तर होता है। धर्म, नीति, कला-साहित्य और संस्कृति का आधार आर्थिक प्रेरणा है, ये ऐतिहासिक भौतिकवाद का सूत्र है।

भारतीय समाज में वर्ग-विभाजन व वर्ग शोषण के साथ-साथ सदियों से चला आ रहा जातिगत सामाजिक उत्पीड़न भी विद्यमान है, जिसकी और प्रगतिवादी साहित्य ने अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया व यही समझा कि वर्ग-शोषण व वर्ग-

18. इक्कीसवीं सदी में दलित आंदोलन (साहित्य एवं समाज - चिन्तन) — जय प्रकाश कर्दम, पृ. 54

विभाजन की समाप्ति के साथ ही जातिगत उत्पीड़न अपने आप समाप्त हो जायेगा। ज्योतिबा फुले, डॉ. अम्बेडकर व पेरियार आदि महापुरुषों ने जातिगत स्तर पर उत्पीडित वर्गों में जो सामाजिक चेतना जागृत की, उससे जातिगत सामाजिक उत्पीड़न के खिलाफ जन-आन्दोलन विकसित हुए, जिन्हें केवल वर्ग संघर्ष में आस्था रखने वाले राजनीतिक नेतृत्व ने न ठीक से समझा, उसे व्यापक जन संघर्षों से समाहित करने के प्रयास किये।"[19]

रामविलास शर्मा मार्क्सवादी सिद्धान्तों से ही दलित एवं स्त्री व उपेक्षित चेतनाओं के लिए कार्य करते रहे। उन्होंने स्वतन्त्र रूप से दलित व स्त्री साहित्य को मान्यता देना सर्वहारा शक्तियों को कमजोर करने वाला माना है। उनके अनुसार इससे फायदा इन वर्गों को न होकर साम्राज्यवादी एवं सामन्तवादी शक्तियों को होगा। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि—"दलितों में जो लेखक पैदा हो रहे हैं, उनको वर्ग की भूमिका समझना चाहिए। भारत में जाति प्रथा हैं, वर्ग भी है। शोषण का माध्यम वर्ग शोषण है। शोषण करने वाले वर्ग के आधार पर शोषण करते हैं यह बात दलितों को समझनी चाहिए और यदि वे वर्ग छोड़ दे तो जाति प्रथा और भी मजबूत होगी। जाति प्रथाओं को मिटाने का अ जाति प्रथा नहीं है। उसको मिटाने का अ वर्ग है।"[20] इस प्रकार रामविलास शर्मा जाति के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि— "दलित किसी वर्ग की बात क्यों नहीं करते? उपेक्षित की बात करते हो, दलित की बात करते हो, इसका मतलब यह कि लोगों में जाति-बिरादरी की जो भावना है, उसको तुम उभार रहे हो और यह बताना चाहते हो कि ऊपर वाली जातियों से नीचे वाली जातियों को संघर्ष करना चाहिए, इस दृष्टि से इतिहास लिखना चाहिए? इसका

---

19. दलित साहित्य एक मूल्यांकन — प्रो. चमनलाल, पृ. 96-37
20. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — श्यौराज सिंह बैचेन, पृ. 83

परिणाम क्या होगा? गरीब आपस में लड़ने लगेंगे। जो वर्ग संगठन कहीं बनेंगे, वर्ग संघर्ष नहीं होगा तो वह खत्म हो जाएगा। यही साम्राज्यवादी चाल है। इस (दलित) इतिहास की पृष्ठभूमि को हम इसी तरह देखते हैं।"[21]

मार्क्सवादी आन्दोलन सामन्तवाद या पूँजीवाद अर्थात् वर्ग-भेद के खात्मे पर जाकर विराम ले लेगा क्योंकि यही उसकी मंजिल है। जबकि दलितों के सामने जाति तब भी एक समस्या बनी रहेगी और उसे तब भी जाति के खिलाफ लड़ना पड़ेगा। साम्प्रदायिकता, शोषण और सामन्तवाद के विरोध में दलित मार्क्सवादियों की आवाज में अपनी आवाज मिलानी चाहिए तब ही दोस्ती और एकजुटता का कोई मतलब है। मार्क्सवादी साहित्यकार और चिन्तकों में से अधिकांश उच्चवर्णीय हिन्दू है।

जो मुसलमान आदि हैं वे प्रायः वही हैं जो सवर्ण हिन्दुओं की तरह इस्लाम में उच्च प्रस्थिति वाले हैं। दलित जातियों के लोग बहुत कम हैं और जो हैं उनकी कोई खास हैसियत या वजूद नहीं है। इसलिए इस बात की संभावना अधिक है कि जाति विरोध के संघर्ष में दलित के समर्थन या सहयोग की बजाय मार्क्सवादी उल्टा उसके विरोध में खड़ा होगा।

मार्क्सवादियों का इतिहास हिन्दुस्तान में 1925 से आरम्भ होता है, बावजूद इसके दलित शब्द अस्तित्व में आया और दलित साहित्य रचने की दरकार हुई। हालांकि इसकी नौबत नहीं आनी थी। जाहिर है भारत का मार्क्सवाद व्यवहारतः ही नहीं, सिद्धान्ततः भी असफल हुआ। यहाँ के मार्क्सवादियों ने भारत के समाज को यूरोप की तरह ही सिर्फ वर्गीय दृष्टि से देखा है, जो यहाँ के समाज का अर्द्धसत्य है।

---

21. आज के सवाल और मार्क्सवाद, — संपा. अजय तिवारी, स्वराज्य प्रकाशन दिल्ली, पृ. 387

दिव्यानंद—"कुली-मजदूर हैं/बोझा ढोते हैं, खींचते हैं ठेला/धूल-धुआँ-भाप से पड़े है सबका/थके-मांदे, जहाँ-तहाँ हो जाते हैं ढेर/...बैठ गए हैं इधर-उधर तुमसे सटकर/आपस में उनकी बतकही/सच-सच बतलाओ/नागवार तो नहीं लगती है?/ जी तो नहीं कुढता है?/घिन तो नहीं आती है?"[22]

दलित साहित्यिक चिन्तन के प्रगतिवादी साहित्य चिन्तन और लेखन दोनों को प्रभावित किया है व मराठी, हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, कन्नड़ आदि के प्रबुद्ध प्रगतिवादी लेखक व चिन्तक दलित साहित्य की प्रवृत्ति का खुले मन से स्वागत करते हुए प्रगतिवादी साहित्य पर इसके प्रभाव को स्वीकार कर रहे हैं, जिससे इन भाषाओं का प्रगतिवादी साहित्य भी जातिगत आधार पर दलित सामाजिक उत्पीड़न के प्रति अधिक संवेदनशील हुआ है और इससे उसकी रचनात्मक ऊर्जा भी बढ़ी है।

इसी प्रकार कहा गया है कि—"1972 में अर्जुन डांगले, नामदेव ढसाल, व जे.वी. पवार आदि युवा मराठी लेखकों द्वारा स्थापित 'दलित पैंथर' पर 'ब्लैक पैंथर' आन्दोलन का प्रभाव तो था ही नक्सलवाद का प्रभाव भी उन पर था। जो उस समय विद्रोही आन्दोलन था व जिसकी जडे प्रगतिवाद में थी।"[23]

इसी प्रकार मार्क्सवादी साहित्य और दलित साहित्य दोनों ही जीवनवादी साहित्यिक धाराएँ हैं। इस साहित्य की समीक्षा भी जीवनवादी है। मार्क्सवादी साहित्य यथार्थवादी साहित्य है। इस साहित्य का पथ स्वतन्त्र और अलग है। दलितों को किसी से विलगाव या परहेज नहीं है वे हर किसी के साथ समता और सहयोग के साथ चलने को तैयार है। दलितों के साथ सहानुभूति रखने वाला कोई भी व्यक्ति यदि उनके साथ मित्रवत

---

22. युद्धरत आम आदमी — फूले-अम्बेडकर की वैचारिकी है दलित कविता की प्रेरणा, पृ. 38
23. दलित साहित्य : एक मूल्यांकन — प्रो. चमनलाल, पृ. 38

जुड़ता है तो उसका स्वागत किया जाएगा, किन्तु इस प्रच्छन्न इच्छा और दम्भ के साथ किए जाने वाले हस्तक्षेप के लिए दलित साहित्य में कोई जगह नहीं होगी कि दलित की असली आवाज वह है जो हम कर रहे हैं न कि वह जो दलित कह रहा है।

"उनमें गहराई या परिपक्वता का अभाव है। उनका दृष्टिकोण एकांगी है। उन्हें केवल जाति के प्रश्न तक सिमटकर नहीं रहना चाहिए। और भी बहुत सारे प्रश्न है बहुत सारे खतरे है जिन पर उन्हें विचार करना चाहिए।"[24] जब-जब दलितों के विषय में यह कहा जाता है तो उसका यही अर्थ होता है कि जाति उतनी बड़ी समस्या नहीं है जितनी की अन्य दूसरी समस्याएँ हैं।

मार्क्सवादी आन्दोलन में शामिल सभी जातियों के लोग एक जैसे शोषण के शिकार नहीं है। दलित, पिछडे, मार्क्सवादी की समस्या केवल आर्थिक शोषण से सम्बन्धित है वहीं दलित, पिछडे मार्क्सवाद में धर्म की कोई विशेष भूमिका नहीं है फिर भी भारतीय समाज में इस पर आधारित उत्तरदायित्व बनता है कि वे दलितों एवं पिछड़ों की समस्याओं के लिए प्रतिक्रियावादियों और साम्राज्यवादियों से संघर्ष में उनका साथ दें। इस सहयोग की पहल भी सवर्ण मार्क्सवादियों को ही करना चाहिए। तभी यह स्पष्ट होगा कि वे वास्तव में शोषणमुक्त समाज की आकांक्षा रखते हैं। इसी बात को कंवल भारती जी कुछ इस तरह से कहते हैं—"वे (मार्क्सवादी) दलितों से तो यह अपेक्षा करते हैं कि वे मार्क्स को पढ़ें और मार्क्सवाद से जुडें। पर वे स्वयं न अम्बेडकर को न पढ़ना चाहते हैं न समझना। यह एक बड़ी विडम्बना है, जिसके परिणामस्वरूप ही भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन असफल रहे हैं।"[25]

---

24. इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन (साहित्य एवं समाज चिन्तन), पृ. 55-56
25. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — डॉ. श्यौराज सिंह बैचेन, पृ. 84

मार्क्सवादियों का इतिहास हिन्दुस्तान में 1925 में आरम्भ होता है, बावजूद उसके दलित शब्द अस्तित्व में आया और दलित-साहित्य रचने की दरकार हुई। हालांकि इसकी नौबत नहीं आनी थीं। जाहिर है भारत का मार्क्सवाद व्यवहारतः ही नहीं सिद्धान्ततः भी असफल हुआ। यहाँ के मार्क्सवादियों ने भारत के समाज को यूरोप की तरह ही सिर्फ वर्गीय, दृष्टि से देखा, जो यहाँ के समाज का अर्द्धसत्य है। जाति की जकड़बन्दी मुब्तिला इस समाज में आज भी वर्ग की अवधारणा हद तक झूठ ही रही। कहना यह है कि इसी दर्शन पर प्रगतिशील साहित्य रचा गया लेकिन वह भारतीय समाज के सच का पीछा दूर तक नहीं कर पाया फलतः उसे पकड़ नहीं पाया। यह काम दलित साहित्य ने किया। इसके लिए जाति व्यवस्था केन्द्र में रही ओर महत्त्वपूर्ण भी, हालांकि सब इससे आँख बचाते रहे। बकौल जयप्रकाश कर्दम— "भारतीय समाज में चिन्तन की हर गाड़ी जाति के स्टेशन से बचकर निकलती है, जबकि दलितों की सारी समस्याओं के मूल में सबसे बड़ा कारक जाति है।"[26]

दलित चिन्तक मार्क्सवाद का विरोध न करके भारतीय मार्क्सवादी संगठनों की सवर्ण मानसिकता का विरोध कर रहे हैं। यही बात तेज सिंह जी अपने लेख 'मार्क्सवाद एवं साहित्य' में कह रहे हैं। "हमें यह बात मानने में कोई दिक्कत नहीं आनी चाहिए कि हिन्दुवाद पर उसके हिन्दुत्व पर उसकी रूढ़िवादी संस्कृति पर और परम्परागत विचारधारा पर सबसे जबरदस्त हमला मार्क्सवादी चिन्तकों, विचारकों और इतिहासकारों ने किया है।

इसके साथ-साथ आजादी के बाद विकसित वामपंथी आन्दोलन से भी दलितों के एक तबके को वैचारिक ताकत मिली है और उसमें जुझारूपन भी आया

---

26. युद्धरत आम आदमी : फूले-आम्बेडकर की वैचारिकी है दलित कविता की प्रेरणा—रमणिका गुप्ता, पृ. 39

है, विरोध की परम्परा विकसित हुई है और वह अपने जनवादी अधिकारों के प्रति जागरूक भी हुआ है।"[27]

दलित चेतना और मार्क्सवादी साहित्य निश्चित लक्ष्य और विचार से प्रेरित होने के कारण इसी इतिहास के स्वरूप और प्रयोजन में साम्य दिखता है। दोनों के प्रेरणा भूमिका और प्रतिबद्धता मानवतावाद से सम्बन्धित है। तो मार्क्सवादी लेखकों ने इसे 'मार्क्सवाद' नाम दिया है। दोनों विचारों में, साहित्य में, आन्दोलन में और समाज में मनुष्य की मुक्ति का और महानता का विचार व्यक्त हुआ है। देश-प्रदेश भाषा और परिस्थिति भिन्न हो तो इस साहित्य की भूमिका में जो एकरूपता दीख पड़ती है—वह शोषण के विरुद्ध की भावना मनुष्य की मुक्ति का समर्थन और मनुष्य की महानता का सम्मान है। भारतीय कम्युनिष्टों ने जाति-व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष नहीं किया इसलिए बाबासाहब अम्बेडकर ने भारतीय कम्युनिस्ट नेताओं की आलोचना की है। इतना ही नहीं मार्क्स 'हिंसा और तानाशाही' को स्वीकार करता है।

इसलिए बाबासाहब ने मार्क्स का विचार नकार कर जनतन्त्र और हिंसा का मार्ग स्वीकारने वो बुद्धि-विचार को मार्क्स के विकल्प के रूप में स्वीकृत किया है। भारतीय मार्क्सवादी विचार ने भारतीय सामाजिक परिस्थिति में मार्क्सवाद अपूर्ण है, यह मानकर ऐसा दृष्टिकोण अपनाया, जिससे भारतीय सामाजिक संदर्भ में मार्क्सवाद का उचित विकास हो। इस दृष्टिकोण के कारण भारतीय मार्क्सवादियों ने फुले, अम्बेडकर और मार्क्स के विचारों में मैत्री की कल्पना की है। दलितों के प्रश्न केवल सामाजिक नहीं है, वे आर्थिक भी है। वर्ण-व्यवस्था का गहराई से विचार किए जाने पर लगता है कि उसके पीछे एक ऐसी ही मजबूत विषम अर्थव्यवस्था कार्य कर रही

---

27. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, पृ. 86

है। यह प्रस्थापित विषम-व्यवस्था केवल अल्पसंख्यक दलितों द्वारा नष्ट नहीं होगी। इसके लिए मार्क्स और अम्बेडकर की विचार-प्रणाली को स्वीकार करने वाले समीक्षकों ने माना है कि जाति-अन्त का अम्बेडकरवादी विचार और वर्ग-अन्त का मार्क्सवादी विचार दोनों ढसाल, दया, पवार, अर्जुन डांगले, यशवंत मनोहर, रावसाहेब कसबे, शरद पाटील, सदा कव्हाड़े, नारायण सुर्वे, सुधीर बेडेकर, शरतचंद्र मुक्तिबोध, प्र.श्री. नेरूरकर और वि.स. जोग का उल्लेख करना पड़ता है।

बाबासाहेब अम्बेडकर के मरणोत्तर काल में मार्क्स और अम्बेडकर और 'गाँधी और अम्बेडकर' नामक वैचारिकता की चर्चा हुई है। अर्थात् दलित साहित्य की समीक्षा में प्रधान विचारधारा अम्बेडकर विचार प्रणाली हुई, तो इसके साथ-साथ समविचारी पुरोगामी विचारों का योगदान दलित साहित्य की समीक्षा को प्राप्त हुआ है, यह भी स्पष्ट दिखाई देता है।

(ङ) दलित चेतना और डॉ .अम्बेडकर

14 अक्तूबर, 1956 को बाबासाहेब अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। बाबासाहेब के धर्मान्तरण के कारण दलितों ने हिन्दू धर्म का त्याग किया। हिन्दू देवी-देवताओं को नकारा। गाँव के हीन काम छोड़ दिए। इसलिए सवर्ण और दलितों में नए ढंग की अनबन पैदा हुई। इस उथल-पुथल से दलितों को सत्व मिल गया। "हम बौद्ध हो गए हैं, इसलिए हिन्दू धर्म द्वारा हम पर लादे गए हीन काम अब हम नहीं करेंगे।"[28] ऐसी नई चेतना पूरे दलित समाज में जाग्रत हुई।

इस सांस्कृतिक संक्रमणकाल में ही दलित साहित्य के आन्दोलन ने जड़ जमाई। इसलिए इस नए साहित्यिक आन्दोलन का मूल्यांकन बौद्ध विचार से हो, ऐसी

---

28. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र — शरण कुमार लिंबाबे, पृ. 51

अपेक्षा नव बौद्ध विद्वानों की ओर से होने लगी। बौद्ध विचार-प्रणाली के साथ अम्बेडकर विचार-प्रणाली द्वारा दलित साहित्य की समीक्षा करने के प्रयत्न हुए।

धर्मांतरण से दलित समाज की मानसिकता में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। धर्मांतरण की ऐतिहासिक घटना नए मुक्तिसंग्राम का प्रारम्भ थी। बौद्ध धर्म के कारण दलितों को एक नया सांस्कृतिक आयाम मिल गया। इसका दलित साहित्य के विकास पर पोषक प्रभाव हुआ।

बौद्ध धर्म में जाति व्यवस्था को कोई स्थान नहीं है। बौद्ध धर्म समता का समर्थन करने वाला और विषमता नकारने वाला धर्म है। बुद्ध ने जाति प्रथा को नकारा और संघ को प्रवेश दिया। इसलिए बाबासाहब ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया।

किसी भी नई धारा का विकास प्रचलित धारा की प्रवृत्ति तथा उसके मूल्य और मान्यताओं के प्रति असहमति, असंतोष और आक्रोश का कारण या परिणाम होता है—चाहे वह धारा समाजिक हो, चाहे राजनीतिक, सांस्कृतिक या साहित्यिक। उस धारा के अपने मूल्य, मानदण्ड और मान्यताएँ होती हैं। किसी भी साहित्यिक धारा के मूल्य, मानदण्ड और मान्यताएँ उस धारा को उद्‌भूत और विकसित करने वाले साहित्यकार और उसके समाज की शिक्षा, संस्कृति और उसके चिन्तन के आधार पर बनती और विकसित होती है। उस धारा के उद्भव उद्‌देश्य और आवश्यकता के पीछे उसके लेखक समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ उसकी धार्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि या परम्परा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

परम्परागत साहित्य से पृथक दलित साहित्य का निर्माण हुआ और उसकी अपनी अलग पहचान बनी है तो इसका भी यही कारण है समाज की तरह साहित्य में

भी दलितों को हाशियों पर रखा गया तथा उनकी आवाज को अनसुना और उपेक्षित किया गया। दलित क्या सोचता है, वह क्या चाहता है, उसकी आशा–आकाक्षाएँ क्या है? वह दीन–हीन है, लेकिन क्यों? इसका क्या कारण हैं और कैसे उसको इस स्थिति से उबारा जा सकता है? इस और समुचित रूप से कभी कोई ध्यान नहीं दिया गया। सदियों से दासता और दलन के शिकार दलितों द्वारा अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए किए जा रहे संघर्ष को रेखांकित नहीं किया गया। दलितों के हित में ऐसे साहित्य के सृजन की नितान्त आवश्यकता जो दलितों को उनकी अस्मिता से परिचित कराए, अज्ञान के अंधेरे से बाहर निकालकर उनको ज्ञान का सूर्य दिखाए, अन्धविश्वासों, आडम्बरों के जाल से मुक्त कर उनको तर्क और वैज्ञानिकता का पाठ पढ़ाए, हीनता की गर्त से निकालकर उनमें आत्मविश्वास का संचार करें, उन्हें आत्म–सम्मान, स्वाभिमान और गौरव से जीने की भावना पैदा करें। किन्तु परम्परागत साहित्य में इन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए दूर–दूर तक कोई गुंजाइश नहीं थी। दलितों के हितों को वहाँ कोई महत्त्व नहीं मिला। कहने की आवश्यकता नहीं थी। दलितों के हितों को वहाँ कोई महत्त्व नहीं मिला। कहने की आवश्यकता नहीं है कि सारे के सारे परम्परागत साहित्य में प्रकृति प्रेम और युद्ध वही मुख्य प्रतिपाद्य रहे हैं। आधुनिक काल में अवश्य भूख और रोटी को भी प्रतिपाद्य बनाकर आम आदमी की संवेदना और सत्रांश को रेखांकित किया गया है किन्तु दलितों की संवेदना और सत्रांस आम आदमी समस्या नहीं है, उनकी असली समस्या वर्ण और जाति को लेकर है। जब तक वर्ण और जाति के आधार पर उनको हीनता और हिकारता से देखा जाएगा, जब तक अस्पृश्य समझकर उनकी अपेक्षा और उत्पीडन होता रहेगा तब तक उनकी सामाजिक स्वीकृति और सम्मान की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए वर्ण–जाति व्यवस्था औंर उसके आधार तथा उसके समर्थन में तर्कों और मान्यताओं पर चोट

दलित हित में साहित्य की सर्वप्रथम आवश्यकता है। लेकिन परम्परागत साहित्य में इन पर चोट करने का प्रयास प्रायः नहीं हुआ।

"बाबासाहब की जीवनगाथा, उनका कार्य और वाणी तथा उनके अमूल्य विचारों से दलित समाज, दलित आन्दोलन और दलित लेखक जाग्रत हुआ, इसलिए बाबासाहब अम्बेकर ही दलित साहित्य की सच्ची प्रेरणा हैं।"[29]

दलित साहित्य की प्रेरणा अम्बेडकरवादी विचार है, क्योंकि बाबासाहब अम्बेडकर के विचारों और आन्दोलन से दलित समाज को स्वाभिमान मिला है। यदि बाबासाहब न होते तो हम न होते। दलित समाज में प्रत्येक व्यक्ति का एक दूसरे को अभिवादन करते हुए 'जय भीम' का उच्चारण करना भी इस बात का घोतक है कि बाबासाहब अम्बेडकर ही हमारी सच्ची प्रेरणा हैं।

अम्बेडकरवाद जातिभेद के अन्त का आधुनिक विचार है। बाबसाहब ने हिन्दू धर्म में विषम व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष किया, लेकिन जातिव्यवस्था ने विषमता का पालन पोषण किया। इस जाति संस्था के लक्षण निम्न हैं–

1. वंश परम्परा	:	जिस जाति के माँ–बाप है बच्चा भी उसी जाति का होता है।
2. विवाह बंधन	:	अपनी जाति में ही विवाह स्वीकार्य और जातिबाध्य विवाह वर्जित।
3. पेशा	:	पैतृक पेशा छोड़कर दूसरी जाति का पेशा करना वर्जित।

29. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र — शरण कुमार लिंबाबे, पृ. 57

4. खाद्य-पेय नियमन : खान-पान में केवल शाकाहारी, मांसाहारी का ही फर्क न होकर अपनी अपेक्षा हल्के और परधर्म के व्यक्ति के अन्न और पानी का स्पर्श न करना।

5. ऊँच-नीच : कुछ जातियों को वरिष्ठ और कुछ को कनिष्ठ मानना।

जातिव्यवस्था ने दलित समाज का शोषण किया और दलितों पर पीड़ादायक प्रतिबंध लाद दिए। दुर्बलता, दरिद्रता और अज्ञानता के कारण दलित समाज लूटा गया इसलिए बाबासाहब ने आत्मसम्मान की भावना निर्मित करने की बात कही। बाबासाहब अम्बेडकर ने कहा कि—"दलितों में आत्मसम्मान का भाव जाग्रत होना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि दलितों को सत्ता के सूत्र और कानून बनाने की ताकत हासिल करनी चाहिए। लादे गऐ जीवन विवशता, सहायता और मजबूरी व गुलामी से जीने वाले दलितों के लिए यह विचार नए और क्रान्तिदर्शी थे। बाबासाहब अम्बेकर द्वारा प्रस्थापित मूल्यसारिणी नकारने के निम्न कारण दिए जा सकते हैं।"

1. सवर्णों का श्रेष्ठत्व।

2. सामाजिक जीवन में बेमेल आचार-विचार

3. स्त्री और शूद्रों की प्रतिष्ठा का अवमूल्यन।

4. पवित्रता और अपवित्रता की भ्रामक कल्पनाएँ।

साउथ ब्यूरो कमीशन, सायमन कमीशन अथवा गोलमेज परिषदों में बाबासाहब द्वारा प्रस्तुत अस्पृश्यों की कैफियत, 'मूकनायक' 'बहिष्कृत भारत 'जनता', समता जैसी उनकी पत्रिकाएँ, बहिष्कृत हितकारिणी सभा, मजूर पक्ष', शेड्यूल्ड कास्ट फेडेरेशन और 'रिपब्लिक पक्ष' के बारे में उनका संकल्प, कालाराम

मन्दिर का प्रवेश, महाड के चवदार तालाब का सत्याग्रह और मनुस्मृति का दहन, बाबासाहब की सभाएँ, सम्मेलन, परिषद, उनके द्वारा स्थापित सिद्धार्थ कॉलेज अथवा मिलिंद कॉलेज, भारतीय संविधान अथवा बौद्ध धर्म का स्वीकार, इन सभी में बाबासाहब अम्बेडकर के सामाजिक न्याय का विचार ही प्रकट होता है।

बाबासाहब अम्बेडकर ने कहा—"मेरे तत्वज्ञान में स्वतत्रता और समता को स्थान है परन्तु असीम स्वतन्त्रता से समता का नाश होता है और पूरी समानता, स्वतन्त्रता की गुंजाइश नहीं रखती। मेरे तत्वज्ञान में बंधुता का बहुत ऊँचा स्थान है। स्वतंन्त्रता और समता की रक्षा बन्धुभाव के कारण होगी। बन्धुत्व यानी कि मानवता और मानवता ही धर्म का दूसरा नाम है।"[30]

"इसके अलावा शोषण, उत्पीड़न, और अन्याय के विरुद्ध दलितों में पैदा हो रही चेतना तथा न्याय और समता तथा अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए उनके द्वारा किए जा रहे आन्दोलनात्मक प्रयासों को भी नजरअंदाज किया गया।

सहित्य के इस उपेक्षा भाव ने दलितों को यह सोचने के लिए विवश किया कि परम्परागत साहित्य उनका पक्षधर नहीं हैं, उनका प्रतिनिधित्व नहीं करता है। उसका रवैया हिन्दूवादी है जो दलित विरोधी है। साहित्य के इस रवैये के कारण ही सामाजिक परिवर्तन और प्रगति को गति नहीं मिल रहीं है।"[31]

दलितों को उनकी अस्मिता का अहसास सही मायनों में बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर ने कराया। उन्होंने ही दलितों को अन्याय और शोषण के खिलाफ संघर्ष

---

30. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र — शरण कुमार लिंबाबे, पृ. 57
31. इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन (साहित्य एवं समाज-चिंतन) — जयप्रकाश, पृ. 47

करने के लिए प्रेरित किया तथा उनमें यह विश्वास पैदा किया कि वे किसी से कम नहीं हैं, उनमें भी ऊपर उठने तथा आगे बढ़ने की सभी संभावनाएँ हैं।

(च) दलित चेतना व जीवन मूल्य

यहाँ दलितों के जीवन–मूल्यों पर संक्षेप में प्रकाश डालना उचित जान पड़ता है। एक दलित व्यक्ति सम्पूर्णता में अपना जीवन जीने के कुछ नियम–कायदे बनाता है। इनमें बहुत सारे नियम उसके संस्कारगत होते हैं जो उसे विरासत में मिलते हैं। यहाँ कहना आवश्यक है कि दलित जीवन गैर–दलित जीवन से प्राकृतिक रूप में समान होते हुए भी सामाजिक स्थितियों में भिन्न होता है। दलित जीवन एक अलग जीवन गैर–दलित जीवन से प्राकृतिक रूप में समान होते हुए भी सामाजिक स्थितियों में भिन्न होता है। दलित जीवन एक अलग तरह के मूल्यों के साथ जीता है। किन्तु स्वतन्त्रता मिलने के बाद भारतीय संविधान ने समता, स्वतंन्त्रता और बन्धुता के रूप में मिले मौलिक अधिकारों का उपयोग का शिक्षा तथा सुरक्षा के अवसरों की समानता के कारण दलितों में सम्मान से जीवन जीने की अभूतपूर्व भावना जागृत हुई है। उनमें सदियों पुराने वर्णगत सामन्ती शोषण, अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध न्यायिक आवाज उठाने का अदम्य साहस पैदा हुआ है। दलितों के विशेष और स्वतन्त्र जीवन–मूल्यों की पहचान करने के लिए हमें उनके सामाजिक, सांस्कृतिक शारीरिक बौद्धिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक इत्यादि क्रियाकलापों के अध्ययन में संजीदगी के साथ जाना पड़ेगा। इसलिए दलितों के इन जीवन मूल्यों को केवल किसी एक क्षेत्र के अध्ययन से पूरी तरह समझ लेने का दावा करना तर्कसंगत नहीं होगा। किन्तु दलित कथा–साहित्य के रूप में हमें इस विषय को समझने के लिए सीमित क्षेत्र मिला है, और उसमें भी जिन विषयों को लेकर कथा साहित्य रचा गया है, शोध की सीमाएँ हमें उसी मर्यादा में रह कर नए मूल्यों को समझने के लिए विवश करती है।

डॉ. दयानन्द बटोही की 'सुरंग', डॉ. कुसुम वियोगी की 'वह पढ़ गई', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'कहाँ जाए सतीश' इत्यादि कहानियों के मुख्य पात्रों में शिक्षा पाने की अदम्य इच्छा है। इन पात्रों के समक्ष उच्च वर्ण के मूल्यों को संजोने वाले अवरोधक खड़े होते हैं। परन्तु इन कहानियों के नायक अपने लक्ष्य को पाने में सफल है। डॉ. दयानन्द बटोही की 'सुरंग' का नायक उच्च शिक्षा के लिए संघर्ष करता है। पी-एच.डी. का इंटरव्यू बोर्ड उसका कम नंबर होने का हवाला देकर प्रवेश देने से इन्कार कर देता है। पर वह हताश होकर कहता है, "सभी डिपार्टमेंट में थर्ड क्लास रिसर्च कर रहे हैं। मेरा तो सैकेण्ड क्लास है।"[32]

'सुरंग' के नायक में व्यवस्था के प्रति आक्रोश है। मुखरता उसकी विशेषता है। और वहाँ अपने ध्येय में सफल होने के प्रति आश्वस्त भी है। अनुसूचित जाति के छात्रों का शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षण पूरा न होने को लेकर वह झगड़ता है और कहता है, "आप भी द्रोणाचार्य जैसा अंगूठा का दान चाहते हैं। मगर याद रखिए। हम अंधेरे का सैलाब फाड़ कर अपना हक लेंगे। आप जैसे कुटिल लोगों ने ही तो हरिजन-दुर्जन का भेद बनाने में सहयोग दिया है। आपका हम घेराव करेंगे।"[33] यहाँ पात्र के दिल में आरक्षण को पूरा होने की दलील देना, न्याय के लिए मुखर होना और विभागाध्यक्ष का घेराव करना इत्यादि नवीन मूल्यों के उदय के संकेत हैं और यह करने के लिए संविधान प्रदत्त अधिकार चेतना उसे प्राप्त है। डॉ. कुसुम वियोगी की कहानी 'वह पढ़ गई' की नायिका चेतना अपने वर्ण व जाति सम्बन्धी संस्कारों में ढल चुके मूल्यो के विरुद्ध शिक्षा पाना चाहती हैं। उसकी माँ उसे पुश्तैनी कार्य अर्थात् मैला साफ करने के

---

32. दयानन्द बटोही — सुरंग, पृ. 10
33. दयानन्द बटोही — सुरंग, पृ. 15

लिए दबाव डालती है और मारती-पीटती है, पर चेतना में शिक्षा के महत्त्व की चेतना का जन्म हो चुका है। यह निम्न संवाद से स्पष्ट होता है—

"इतनी बड़ी होकर माँ का कहना नहीं मानती।"

"अंकल...। इस काम के लिए।" कहीं अन्तर में समाया आक्रोश खौल-सा गया था, "मुझे नहीं पसन्द ये पुश्तैनी धंधे। ये ही मरें-खपें इस धन्धे में।" टका-सा जवाब दिया उसने।

"फिर क्या करोगी?"

"पढ़ूंगी।"

और वह देवदार के वृक्ष-सी तन कर खड़ी हो गई।"[34]

कहानी की नायिका चेतना शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपनी माँ से विद्रोह करती है। उसका यह विद्रोह ही नवीन उन्नत जीवन मूल्यों की प्रतिस्थापना है। इसी प्रकार डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की कहानी 'अस्थियों के अक्षर' के बालक सौराज के दिल में शिक्षा प्राप्त करने की तीव्र इच्छा है। वह हर हालत में पढ़ना चाहता है। सोतेले पिता भिखारी द्वारा ईर्ष्यावश किताबों को जलाने के बाद बालक 'डल्ला' चाचा की जेब से एक रुपया चोरी करता है और उस रुपये से पुस्तक खरीद कर अक्षर-ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

उसके द्वारा रुपया चुराने की सजा में पिता और चाचा द्वारा उसकी माँ को बेरहमी से पीटा गया और सौराज को माँ की पीठ को सेंकते हुए भी चोट के निशान और किताबी अक्षरों में समानता लगती है। माँ के पिटने के अपराध-बोध के बावजूद

---

34. डॉ. कुसुम वियोगी — वह पढ़ गई, पृ. 28

किताब व किताब में छपे अक्षर ही उसकी स्मृति-पटल में घूमते हैं। यहाँ नायक सौराज के दिल में शिक्षा प्राप्त करने की स्वाभाविक इच्छा का होना अपने आप में नवीन और सकारात्मक जीवन-मूल्य है। अस्तु, यहाँ बच्चे में नए शैक्षिक मूल्यों का जन्म होता है। वह अपनी रुचि और लगन के कारण ज्ञान की रोशनी पा लेता है जबकि उसके चारों तरफ शिक्षा विरोधी अंधकार का वातावरण व्याप्त है, जिसमें उसकी पिछली सब पीढियों के अस्तित्व विलुप्त हो चुके है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'कहाँ जाए सतीश', 'सलाम', गोहत्या', 'अंधेरी बस्ती', 'सपना', मुंबई कांड', 'अम्मा' इत्यादि कहानियों में शैक्षिक, सामाजिक समानता, स्वाभिमान जैसे जीवन-मूल्य दिखाई पड़ते हैं। 'कहाँ जाए सतीश' का नायक सतीश अपने परिवार व समाज के जातिभेद-विषयक पुरातन मूल्यों से मुक्ति पाना चाहता है। वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए परिवार से विद्रोह करता है। वह समानतावादी मूल्यों के आधार पर नया जीवन जीने का आकांक्षी है। वस्तुतः सतीश का पुरातन मूल्यों से विद्रोह व स्वयं को शिक्षा से संलग्न करना नवीन मूल्यों का सूचक है। 'सलाम' कहानी का पात्र हरीश जातिगत पहचान व मान मर्दन कर नीचा दिखाने वाली सलाम परम्परा से विद्रोह करके आत्मसम्मान के नए मूल्यों को स्थापित करता है। हरीश को यह प्रेरणा परोक्ष रूप से भारतीय संविधान से मिलती है अर्थात् यहाँ प्रकारांतर से कहानी में संविधान की मूल भावना, समानता और स्वतन्त्रता का आदर हुआ है।

'अंधेरी बस्ती' का बिसेसर जब विमला, मीरा, दमयन्ती और पारवती की भांति अपनी बहन इमरती के यौन शोषण को देखता है तो प्रधान के पुत्र लेखराज के प्रति आक्रोश की ज्वाला उसमें दहकने लगती है। वह पिता घसीटा द्वारा शोक मनाने

पर दुत्कारता है—"तू मेरा बाप है...थू...इसलिए पैदा किया था...इतना सब सुन कर भी चुपचाप बैठा है...तू बैठ घर में। उस कुत्ते की औलाद को मैं देखता हूँ आज।"[35] यहाँ बिसेसर पुरानी पीढ़ी की भांति चुप बैठने के बजाय अत्याचार के विरुद्ध आक्रोश, प्रतिकार व्यक्त करने से उसके आत्मसम्मान की रक्षा हुई है और स्वतन्त्र बोध के नवीन मानवीय मूल्यों को प्रश्रय मिला है।

उपन्यासकार डी. पी. वरुण के उपन्यास अमर ज्योति का नायक अमर व स्वामी प्रज्ञानंद ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं तथा स्वर्ग, नरक, भाग्यविधाता, अन्धविश्वास, अन्ध श्रद्धा का विरोध करते हैं। ये पात्र वर्ण और जाति प्रधान समाज की मानसिकता बदलने का प्रयास करते हैं। आचार्य प्रज्ञानन्द का गैर परम्परागत निम्न उपदेश उदारहरणार्थ प्रस्तुत है—"आप जो भी कार्य करेंगे उसी का फल मिलेगा, भाग्य में कुछ नहीं हैं, आपके हाथ में है। जिस कार्य को आप दृढ़ता से करेंगे वही सफल होगा, आपको आगे बढ़ाएगा आपकी मनोकामना पूरी होगी।"[36] यहाँ लेखक का उद्देश्य स्वामी प्रज्ञानन्द को माध्यम बना कर दलितों को भाग्यवाद और पुनर्जन्म से मुक्त करने तथा श्रम के महत्त्व को समझना है। वैसे परिश्रम करना दलितों का स्वाभाविक गुण तो है ही, अपितु यह इनके जीवन–मूल्य भी है। उनको अन्धविश्वास, धर्म और भाग्यवाद से मुक्ति दिलाने की बात कर लेखक ने नवीन दृष्टि का प्रतिपादन किया है।

निष्कर्ष

सारांशतः कहा जा सकता है कि इस 21वीं सदी के साहित्यकारों ने अपनी कलम के माध्यम से मानव मन को जागृत किया है, उनमें चेतना पैदा की है। हिन्दी

---

35. ओमप्रकाश वाल्मीकि — अंधेरी बस्ती, निर्णायक भीम, अगस्त, 1980, पृ. 34
36. ओमप्रकाश वाल्मीकि — अंधेरी बस्ती, निर्णायक भीम, अगस्त, 1980, पृ. 35

साहित्य में प्रतिपादित दलित जीवन हिन्दू समाज की वर्णव्यवस्था के शिकार लोगों का चित्रण है, भले ही यह चित्रण अधिक न हो, परन्तु दलितों की आम समस्याओं का यथार्थ चित्रण अवश्य है। दलित जीवन आधुनिक समाज में एक और हिन्दू समाज की जाति व्यवस्था की ज्यादतियाँ और सामाजिक संरचना की असंगतियाँ दलित को किस प्रकार झिंझोड़ती है, अपमानजनक स्थितियों में जीने को मजबूर करती है इस अवस्था की पोल खोलने का कार्य हिन्दी साहित्य में अनेक दलित एवं गैर दलित साहित्यकारों ने किया है, जिनमें प्रमुखतः डॉ. तारा परमार, श्री नामवर सिंह, सुश्री निर्मला जैन, डॉ. शिवकुमार मिश्र, डॉ. दशरथ सिंह, डॉ. भगवान कहार, श्री कमला प्रसाद, डॉ. पुष्पा सक्सेना इत्यादि भी है। इन साहित्यकारों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से साहित्यकार हैं, जिन्होंने दलित साहित्य पर पूरी तटस्थता के साथ लिखा है और आज भी लिख रहे हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि हिन्दी में दलित जीवन का साहित्य अपने विकास के सोपान सर कर रहा है। प्रवर्तमान युग में पर्याप्त सीमा तक इसका प्रचार-प्रसार भी हो रहा है। नये-नये रचनाकार उभरकर सामने आ रहे हैं। आशा है इनके लेखन में दलित जीवन के मानवीयता विचार नये-नये रूप में प्रस्तुत होंगे।

❑

अध्याय चतुर्थ

हिन्दी कथा–साहित्य में दलित चेतना का कथ्य और शिल्प

दलित साहित्य आधुनिक काल की देन है किन्तु इसके सूत्र आदिकालीन साहित्य से ही देखने को मिलते हैं। आधुनिककाल में यह एक आन्दोलन के रूप में उभरकर सामने आया। जिसमें 'दलित' शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया गया। दलित उसे कहा गया जो सर्वहारा है जो पिछड़ा, शोषित, पीड़ित व कुचला गया है। दबाया गया है। वैसे तो दलित साहित्य उसे कहा जा सकता है जो सर्वहारा वर्ग की समस्याओं, व्यथाओं, पीड़ाओं आदि को व्यक्त करता है। किन्तु अब सामान्यतः दलितों के द्वारा दलितों की समस्याओं को लेकर लिखे गये साहित्य को दलित साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उसका कारण है कि जितना यथार्थ पूर्ण दलितों द्वारा लिखा हुआ साहित्य होगा उतना दूसरों का नहीं। औरों का दलित सम्बन्धी साहित्य संवेदना का साहित्य माना जाता है। इसलिए आज दलित साहित्य का स्वरूप बिल्कुल साफ हो चुका है।

हिन्दी के आलोचक दलित साहित्य पर कई प्रकार के आरोप लगाते हैं। खासकर के वह आरोप गुणवत्ता को लेकर, भाषा और शिल्प को लेकर दलित साहित्य को नकारते रहे हैं। कुछ इस तरह की बात को उद्‌घाटित करते हुए मुद्राराक्षस

लिखते हैं कि "अक्षर यह प्रश्न उठता है कि दलित रचनाएँ गुणवत्ता की दृष्टि से कमजोर है। आखिर यह गुणवत्ता है क्या! और हमेशा उस गुणवत्ता का धार्मिक निष्ठा के साथ पालन किया गया है? छन्द इस गुणवत्ता का अनिवार्य तत्व था पर आधुनिक कविता ने इसे छोड दिया। जिस अलंकार निर्भरता ने रीति साहित्य की गुणात्मकता के मानक स्थापित किये थे, अलंकारधर्मिता को वर्तमान साहित्य में कहाँ देखा जाएगा? इस सदी के शुरू में खड़ी बोली को कविता के लिए घोर अनुपयुक्त माना जाता था, पर आज कविता खड़ीबोली में ही लिखी जाती है।"[1] आगे वे कहते हैं..."कोई भी नया कथ्य अपने पूर्व की विचार परम्परा से विद्रोह करता है। उतनी सीमा तक परम्परा के सौन्दर्यबोध सम्बन्धी मूल्यों को भी तोड़ता है। वह अपनी भाषा, अलंकार शा और अपना छन्द तन्त्र बनाता है। कबीर ने यही किया था। उन्होंने संस्कृत का प्रयोग भी नहीं किया था और तत्कालीन सवर्ण कथ्य की अवधी और ब्रज को भी स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने जिस भाषा का आविष्कार किया था, वह देश के बहुसंख्यक गैर-साहित्यिक समाज के बोध की भाषा थी। इसलिए मात्रिक छन्दों का स्वरूप भी उनका अपना था।"[2]

दलित साहित्य ने अपने लिए सहज, सरल और आम बोलचाल की सपाटबयानी भाषा को अपनाया है।

दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ, परम्परागत साहित्यिक भाषा, काव्य, शैली, प्रस्तुतीकरण को नकार कर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा को दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा आदि की सही और यर्थाथवादी अभिव्यक्ति बन सके।

---

1. मुदाराक्षस — साहित्य की संस्कृति में दलित, राष्ट्रीय सहारा (29 नवम्बर 1998), पृ. 14
2. मुदाराक्षस — साहित्य की संस्कृति में दलित, राष्ट्रीय सहारा (29 नवम्बर 1998), पृ. 14

दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है। जिसमें युगों की यातनाएँ साकार हो उठी हैं। मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्यौराज सिंह बेचैन, जयप्रकाश कर्दम आदि रचनाकारों ने भाषा का विस्तार दिया है।

दलित साहित्य में चित्रित समूहमन के अनुभवों की अनुभूति विद्यमान है। दलित साहित्य में गंदे और अश्लील भाषा के प्रयोग की और संकेत करते हैं। वह कल्पना में नहीं जीता वह जीवन के कटु यथार्थ से रूबरू है। यातनाओं से उपजी आक्रोशी भाषा तेज बानी में ऐसे अनेक शब्द प्रकट होते हैं। दलित जिस परिवेश में जीवन जीते हैं वहाँ गन्दी गलियों में नंग-धडंग बच्चे घूमते हैं, दूषित वातावरण है जिसे पारम्परिक आलोचक नहीं जानते। उस परिवेश की भाषा में अश्लीलता आएगी ही। दलित साहित्य की भाषा गद्यात्मक है, जिसमें नकार और विद्रोह का स्वर मुख्य रूप से उभरता है। दलितों के जीवन की विसंगतियाँ, उत्पीड़न, शोषण और दमन की अभिव्यक्ति के लिए सही भाषा दलित साहित्यकारों को ज्यादा सटीक लगती हैं।

शिल्प का अंग्रेजी पर्याय टेकनिक है। इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार शिल्प कलात्मक निर्वाह की पद्धति है। शिल्प की परिभाषा हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोशों में इस प्रकार दी गई...

"शिल्प"—पु. (सं.) कला आदि कर्म (वात्सायन ने चौंसठ कलाएँ गिनायी हैं), हुनर, कारीगरी, स्त्रुवा; दक्षता; हस्तकर्म; रूप, आकृति; निर्माण, सृष्टि; धार्मिक कृत्य, अनुष्ठान। कर-पु.-'शिल्पकार'। कला-स्त्री दस्तकारी का कौशल, हुनर की दक्षता-कार-कारक, कारी (रिन्) पु. शिल्पी, कारीगर कौशल-पु. शिल्प कला, शिल्प चातुर्थ। गृह-गेह-पु. कारीगरो के काम करने का स्थान, कारखाना।

जीवी (विन्)–पु. कारीगरी का काम करके जीवन–यापन करने वाला व्यक्ति, शिल्पी।"[3]

"शिल्पी" पु. (सं.) हाथ से चीजें बनाकर तैयार करने की कला (दस्तकारी, कारीगरी)।

शिल्पशा —पु. से. वह शा जिसमें शिल्पों या हाथ की कारीगरियों का विवेचन होता है (टेकनोलॉजी)।

शिल्पक—(सं.) शिल्पकला या उसकी शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाला। (टेकनिकल) जैसे शिल्पिक—प्रशिक्षण।

शिल्प–विद्या—स्त्री–दे. शिल्प।"[4]

प्रत्येक साहित्य की रचना एक कला होती है। अगर वह भाषा में अभिव्यक्त हो रही है तो उसकी एक कलात्मक बुनावट या गठन अवश्य होगा और उस रचनाकार को कलात्मकता का निर्वाह करना पड़ेगा। रचनाकार की कला का खास तरह के ढांचे में निर्वाह होता है। जिस तरह से कुम्हार मिट्टी से कलात्मक बर्तन बनाता है। उसी तरह कला को पेश करने की पद्धतियाँ शिल्प हैं।

लेकिन साहित्य कला जरूर है। भाषा के द्वारा उसकी रचना होती है। भाषा इसका माध्यम है। भाषा का सम्बन्ध मानव मन से होता है। मानव मन देशकाल सापेक्ष निर्मित होता है। भाषा एक सजीव माध्यम है मिट्टी या पत्थर की तरह नहीं है। (लिविंग मीडिया है।)

---

3. वृहत हिन्दी कोश — सं. कालिका प्रसाद, पृ. 13
4. प्रामाणिक हिन्दी कोश — सं. रामचन्द्र वर्मा, पृ. 1222

भाषा में देशकाल के अनुसार परिवर्तन होता है। काव्यभाषा–साहित्य का रूप कवि के मन का जो प्रभाव है उस पर निर्भर रहता है। हर रचनाकार की अपनी स्वयं की काव्यभाषा होती है। उसकी शैली अलग होती है, उसका शिल्प अलग होता है। भाषा ही महत्त्वपूर्ण है। शिल्प में भाषा का बहुत बड़ा योगदान है। रचना पद्धति ही शिल्प है। रेखाचित्र, संस्मरण, फेंटेसी, मिथक, प्रतीक, बिम्ब, शब्द चित्र आदि जो हैं उसमें समाहित होता है।

शिल्प के प्रकार

फेंटेसी

प्रतीक

रूपक

मिथक

लोककथा

पूर्वदिप्ती (फ्लैश बैक)

चेतना प्रभा

यात्रा–वृत्तांत

संस्मरणात्मक वृत्तांत (रिपोर्ट)

आत्मविश्लेषणात्मक आत्मकथात्मक

रेखाचित्र

रिपोर्ताज (शिल्प)

डायरी (शिल्प)

संवाद

वर्णनात्मक (सांकेतिक)

पत्रात्मक

अन्योक्तिपरक शिल्प

सपाटबयानी शिल्प

किसी भी साहित्यिक रचना का महत्त्वपूर्ण तत्व है उसका कथ्य और शिल्प। यहाँ पर दलित साहित्य के कथ्य और शिल्प को लेकर चर्चा की जाएगी। कथ्य और शिल्प का यहाँ कोई वर्गीकरण या उसके भेद-विभेद का उल्लेख न करते हुए दलित साहित्य की उन तमाम विधाओं—कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, नाटक, आदि के कथ्य और शिल्प की चर्चा की जाएगी। कथ्य का विस्तार तो इसी अध्याय में विधागत परिचय देते समय दिया गया है इसलिए शिल्प पक्ष को केन्द्रीभूत करते हुए उसकी चर्चा की जाएगी।

दलित साहित्यकार शोषक-शोषित, पीड़क-पीड़ित, सवर्ण-दलित, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि के भेद को कम करके मानव के विकास में अवरोधक तत्त्वों को समाप्त करके मानव में परस्पर मैत्री, करुणा, समता, स्वतन्त्रता, स्नेह, बन्धुता का समागम लाना चाहते हैं और वे मानव को विकास युग की ओर ले जाने वाले साहित्य का सृजन करना चाहते हैं लेकिन जब तक दलित व गैर-दलितों का यह दलित साहित्य पर छींटाकशी का दौर समाप्त नहीं होगा तब तक मानव के विकास की राह प्रगति की ओर अग्रसर नहीं होगी।

जब भी कोई साहित्य-सृजन होता है तो पाठक का ध्यान उसके मूल कथ्य व विचार की ओर आकृष्ट होता है लेकिन दलित साहित्य के सन्दर्भ में कुछ विपरीत-

सा देखने को मिला है। जहाँ सवर्णों का ध्यान मूल कथ्य व विचार पर न होकर दलित शब्द पर ही टिका हुआ है।

दलित साहित्य मानवता की समानता का पक्षधर है न कि दलित साहित्य का ढिढ़ोरा पीटने का। दलित साहित्यकारों का मानना है कि सिर्फ दलित समाज में जन्म लेने वाला ही दलित साहित्य लिख सकता है। यह बात बिल्कुल प्रामाणिक है क्योंकि जो साहित्यकार स्वयं जिस परिस्थितियों को भोगता है, वही साहित्य को यथार्थता प्रदान कर सकता है। साथ ही इस पर भी कोई पाबन्दी नहीं है कि गैर–दलित साहित्य दलित सम्बन्धी रचनाओं का सृजन नहीं कर सकता। अपने विचारों को समाज तक पहुँचाना सबका अपना–अपना अधिकार है। सामाजिक सरोकारों से समाज को अवगत कराना सभी साहित्यकारों का उद्देश्य है लेकिन गैर दलितों को इस बात का दावा नहीं करना चाहिए कि मेरी अमुक रचना दलित साहित्य की कसौटी पर प्रामाणिक है और इसके आधार पर वह अपनी कृति को जबरदस्त दलित साहित्यिक कृति मानने की होड़ कर बैठता है।

यह तो सार्वभौमिक सत्य है कि जिस तरह एक स्त्री प्रसव पीड़ा को भोगती है उसी प्रकार दलित भी अपनी भोगी हुई व स्वानुभूति की बर्बरताओं व यातनाओं को अपने साहित्य में उकेरता है। दलित साहित्यकार डॉ. प्रेमकुमार 'मणि' का कहना है कि "दलितों के लिए दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है।"[5]

दलित समाज में वास्तविक परिवर्तन देखने को मिले वे डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के राजनीतिक मंच पर आसीन होने के पश्चात् ही नजर आये। फिर भी इससे पहले समाज सुधारकों, जैसे—दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय ने

---

5. दलित साहित्य : एक परिचय (लेख) प्रेमकुमार मणि।

अपने-अपने समाज सुधार आन्दोलनों के माध्यम से दलित चेतना की अलख अवश्य जागृत कर दी थी। लेकिन यह चेतना वर्ण-व्यवस्था की समर्थक रहकर ही सुधार की समर्थक थी। इसी आधुनिक दलित चेतना के युग में सबसे पहले महात्मा ज्योतिबा फूले ने दलितों की कमान सम्भाली। महात्मा ज्योतिबा फूले ने दलित, शोषित एवं पिछड़ों के कल्याण के लिए शिक्षा पर जोर दिया, पाठशालाएँ स्थापित कीं। महात्मा फूले ने 'गुलामगिरी' पुस्तक लिखकर दलितों की दशा व दिशा बदलने की कोशिश की।

आज हिन्दी में भी दलित साहित्य की एक नई धारा प्रवाहित हो रही है। इसका श्रेय जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिषराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, अजय नावरिया आदि को दिया जा सकता है। बीसवीं शताब्दी भारत के लिए दलित साहित्य के उद्भव को लेकर साहित्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन की शताब्दी रही। डॉ. अम्बेडकर ने सर्वप्रथम 'मूकनायक' समाचार पत्र के माध्यम से ही अपनी वाणी को मुखरता प्रदान की। 'मूकनायक' पत्र की दलित समाज में चेतना जागृत करने का माध्यम बना। धीरे-धीरे दलितों में चेतना जागृत होने लगी है। अब सदियों से शोषित दलितों ने अपने हक को पाने की ठान ली है।

डॉ. एन. सिंह का कहना है कि "दलित साहित्य आन्दोलन की शुरुआत मराठी दलित लेखन से मानी जाती है क्योंकि महाराष्ट्र में ही डॉ. अम्बेडकर की 'अमी कसा झालो' (मैं कैसे बना) वर्तमान दलित आन्दोलन की प्रथम रचना है जिसमें मराठी भाषा के दलित साहित्यकारों को साहित्य सृजन के लिए प्रेरित किया।"[6]

---

6. दलित साहित्य परम्परा और विन्यास — डॉ. एन. सिंह, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, 2011, पृ. 78

भारतीय समाज मूलत: वर्ण–व्यवस्था पर आधारित समाज है। हिन्दू धर्म ने सम्पूर्ण समाज को उसके कार्यों के आधार पर चार वर्णों में बाँट रखा है। इनमें क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है। पहले यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी लेकिन धीरे–धीरे यह जन्म पर आधारित हो गई। वर्ण–व्यवस्था में वर्णित चौथे वर्ग शूद्र को दलित मान लिया गया। वैदिक काल से वर्तमान युग के सफर के परिणामस्वरूप शूद्रों को दलित का पर्याय बना दिया गया था। अब तो भारतीय समाज व्यवस्था का आधार जाति व्यवस्था ही स्पष्टत: बनती नजर आ रही है। हिन्दू समाज की रचना असमानता के सिद्धान्तों पर हुई है। यह असमानता अर्थ व राजनीति के क्षेत्र में तो है ही लेकिन सबसे अधिक सामाजिक क्षेत्र में है। इस सड़ी–गली वर्ण–व्यवस्था के कारण दलित जातियों को पशु से भी बदतर जीवन जीना पड़ता है। कावेरी के 'मिस रमिया' उपन्यास की पात्र रमिया विद्यालय में जब पानी पीने के लिए बाल्टी उठाने के लिए दोड़ती है तो वर्ण–व्यवस्था के समर्थक, जो कि टीकाधारी मास्टर है, उसकी गर्जन भरी आवाज रमिया के कानों में पड़ती है। "अरे! तू कौन है? बाल्टी छू दी।" बगुली वाला डंडा को गर्दन में फंसाकर टीकाधारी मास्टर ने उसे अपनी ओर खींचा और तड़ातड़ दो झापट जड़ दिये।"[7] यहाँ वर्ण–व्यवस्था के चिपके रहने वाले लोगों की मानसिकता प्रकट हुई है। युगों से शूद्रों को वर्ण–व्यवस्था के कठोर शिलाखण्डों के नीचे बलपूर्वक दबाया गया एवं कमेरे वर्ग का शोषण किया लेकिन धीरे–धीरे दलित इसका विरोध करने लगे हैं।

वर्ण–व्यवस्था व जाति व्यवस्था नष्ट किये बगैर समाज में समता और बन्धुत्व की भावना पैदा नहीं हो सकती। 'छप्पर' उपन्यास का पात्र चन्दन शिक्षित होकर अपने ही समाज को नहीं बल्कि आस–पास में रहने वाले सभी समाज के

---

7. मिस रमिया — कावेरी, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, 2007, पृ. 7

बच्चों को शिक्षित करता है। इसी सम्बन्ध में रजनी चन्दन से कहती है, "चन्दन! समानता और सामाजिक न्याय की ज्योति तुमने जलाई है, और जहाँ तक भी उसका आलोक पहुँचा है, सामाजिक जीवन में व्याप्त असमानता और अन्याय के अन्धकार का नाश कर, समानता और न्याय का प्रकाश फैलाया है तुमने। हालाँकि सदियों से चली आ रही व्यवस्था को एक दिन, महीने तथा साल में तो बदला नहीं जा सकता, उसमें सम्पूर्ण बदलाव के लिए समय काफी चाहिए। तुम्हारे प्रयासों से बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई है।"[8]

भारतीय समाज में 'जाति' एक संस्था के रूप में संचालित हो रही है। समाज में व्यक्ति का क्या स्तर है, यह भी जाति के आधार पर ही तय होता है। अस्पृश्यता जातिवाद से फैली हुई एक नई बीमारी है। डॉ. अम्बेडकर ने तो बचपन में ही ज्ञान के संग्रहालय से जातिवाद के दंश को महसूस किया था। उन्होंने सभी विद्यार्थियों की जूतियों में बैठकर भी पढ़ना जारी रखा। वास्तविकता तो यह है कि भारतीय समाज में जातिवाद के कारण अनेक प्रकार की विषमताएँ एवं विसंगतियाँ पैदा हो रही है, जो वर्तमान समय में एक गम्भीर समस्या है। सम्प्रदायवाद व क्षेत्रवाद को बढ़ावा देने वाली मूल जड़ भी जातिवाद ही है। जातिवाद की इस समस्या को समाज से खत्म करना है तो समाज में शिक्षा का प्रचार-प्रसार, आर्थिक व सांस्कृतिक समन्वय, अन्तर्जातीय विवाह की सर्वसम्मति आदि का होना आवश्यक है।

सामन्तवाद शब्द से हमारा सीधा-सा तात्पर्य भयग्रस्त मानसिकता से होता है। सामन्तवाद का समाज में नकारात्मक अर्थ ग्रहण किया जाता है क्योंकि यह व्यवस्था शोषण पर आधारित थी। शनैः-शनैः राजतन्त्र के समाप्त होने के साथ-साथ

---

8. छप्पर — जयप्रकाश कर्दम, राहुल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 118

सामन्तवादी व्यवस्था भी समाप्ति के दौर में है, क्योंकि राजतन्त्र व सामन्तवाद में परस्पर सम्बन्ध है।

'नालन्दा विशाल शब्द सागर' शब्दकोष के अनुसार सामन्तवाद का शाब्दिक अर्थ होता है—"किसी राज्य के अन्तर्गत वह प्रणाली जिसमें सामन्तों या सरदारों तथा जमींदारों आदि के सम्बन्ध में बहुत अधिकार या पूरे अधिकार होते हैं।"[9]

कहानी और दलित कहानी में विद्या की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं है, किन्तु विषय-वस्तु, शिल्प, पात्र, चयन, मूल्य और सिद्धान्तों की दृष्टि से इनमें अनेक भिन्नताएँ और अनेक विशेषताएँ हैं—

पहली यह कि परम्परागत कहानी के लेखक खासकर हिन्दी में गैर-दलित ही हैं, किन्तु दलित कहानीकार दलित वर्ग के हैं। उन पर डॉ. भीमराव अम्बेड़कर का प्रभाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। इनसे पूर्व दलितों को विषय बनाकर गैर-दलितों ने भी कहानियाँ लिखीं। प्रमुखता से कथाकार प्रेमचन्द ने दलित विषयक कथा-साहित्य भारी मात्रा में लिखा किन्तु उनके उद्देश्य भिन्न रहे हैं।

प्रेमचन्दकालीन दलित कहानीकारों की अलग से खोज अभी नहीं हो पाई है। फिलहाल वह हमारा विषय भी नहीं है। हाँ, कवि, पत्रकार, समाज सुधारक और चिंतक के रूप में स्वामी अछूतानंद की रचनात्मक सेवाएँ अवश्य उपलब्ध होती हैं।

दलितों द्वारा लिखी गई कहानियों पर शोध या पाठ्य सामग्री के रूप में अभी पर्याप्त अध्ययन नहीं हुए हैं। इस कारण वे विश्वविद्यालयों और विद्यालयों के अध्ययन की मुख्य धारा में नहीं है। हाँ, अब कुछ विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रम में विकल्प और उपअध्यायों के रूप में इसे अवश्य जोड़ने का उपक्रम प्रारम्भ किया

---

9. नालन्दा विशाल शब्द सागर — श्री नवलजी, आदीश बुक डिपो, नई दिल्ली, 2013

है, जो अभी ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। लेकिन शुरुआत हुई है, यह स्वागतेय अवश्य है।

सन् 1970 के दशक में छुट-पुट दलित पत्र-पत्रिकाओं व स्मारिकाओं में कहानी विधा के मानदण्डों को पूरा करती हुई हिन्दी की दलित कहानियाँ भी प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गई थीं। 1975 में सतीश की 'वचनबद्ध'[10] कहानी को अब तक की अपनी शोधपूर्ण जानकारी के अनुसार पहली दलित कहानी मान सकते हैं।

इस कहानी में ब्राह्मण जाति की कट्टरता पराकाष्ठा तक चित्रित हुई है, जिसमें नायिका शुभा ब्राह्मण जाति से है और नायक हरित बाबू जाति से चमार हैं। वे दोनों शिक्षक हैं। शुभा के परिवार वाले इन दोनों के अन्तर्जातीय विवाह को रोकने के लिए शुभा को घर से निकाल देते हैं और बाद में नाटकीय अन्दाज़ में अखबार में विज्ञापन देकर कि 'शुभा तुम्हारे फैसले के आगे सारा घर झुक गया है' झाँसा देकर घर बुला लेते हैं और जब शुभा घर आती है तो उसे अनोखे उपहार के रूप में अलमारी में रखा हरित बाबू नामक उसके चमार प्रेमी का कटा सिर दिखाया जाता है। वह सदमे को सहन नहीं कर पाती। इस कहानी से समाज में स्थापित कठोर जाति व्यवस्था तथा ब्राह्मणों की मनोवृत्ति का पता चलता है कि किसी भी हालत में ब्राह्मण स्वेच्छा से अस्पृश्य जातियों के साथ बेटी का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते। जो सम्बन्ध होते भी है, वह समाज परिवर्तन का उद्देश्य नहीं होता है। हाँ, आजकल दलित परिवार के सफल युवक-युवतियाँ को शादी के नाम पर ठगने का नया तरीका ईजाद अवश्य हुआ है।

---

10. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, पृ. 133

उस दौर की कहानियों में शिल्प की दृष्टि से बच्चापन और रचनात्मकता का अभाव अवश्य मिलता है, किन्तु विषय-वस्तु में दलितों के लिए उस समाज में व्याप्त जातिभेद के परिणामों की अनुगूँज बड़ी मुखर थी। सामाजिक जीवन की कठोर स्थितियों की सशक्त अभिव्यक्ति 1990 के दशक की कहानियों में हुई है।

(क) दलित कहानियों का कथ्य और शिल्प।

(ख) दलित उपन्यासों का कथ्य और शिल्प।

(ग) दलित आत्मकथाओं का कथ्य और शिल्प।

(घ) दलित नाटकों का कथ्य और शिल्प।

(क) दलित कहानियों का कथ्य और शिल्प

यहाँ कथ्य और शिल्प के अन्तर्गत हमने कहानियों के कथ्य का संकेत करते हुए शिल्प को उदाहरण के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कथाकार की सामुदायिक पृष्ठभूमि प्रामाणिक अनुभव के रूप में इस कथा में अन्तर्निहित ऊर्जा का काम करती है। 'सलाम' संग्रह की प्रतिनिधि कहानी हैं। यह एक सबक भी है कि ब्राह्मणवादी सभ्यता किस तरह एक अछूत के साथ-साथ कमल उपाध्याय जैसे सुधर रहे आधुनिक ब्राह्मण के लिए कितनी कष्टप्रद है। उपाध्याय की सिरकत ने इस कहानी की अस्पृश्यता के विरोध को दलित ब्राह्मण का साझा एजेण्डा बना दिया है।

इस कहानी का प्राणतत्व दलित पात्र हरीश द्वारा वह सांस्कृतिक विद्रोह है जिसे पात्र ने बतौर सामाजिक रस्म, चली आ रही सदियों पुरानी मान-मर्दक रस्म को तोड़ दी। गाँव-देहात के नियम-कायदें के हिसाब से हरीश को सलाम के लिए गाँव में जाना था। इस रस्म का निर्वाह बारात की बिदाई से पहले करा था जिसे उसने तोड़

दिया। यही इस कहानी की दलित चेतना और यही इसका संदेश है। कहानी में सहायक घटना क्रम कथा की द्वन्द्वात्मकता को बढ़ाता है। सलाम समाज में गहरी पैठी अस्पृश्यता की सिंपल स्टडी की गई है। कहानी का ताना-बाना हरीश नामक दलित की शादी में शामिल हुए कमल उपाध्याय को लेकर बुना गया है। पात्रानुकूल भाषा, कसे हुए संवाद, विषम की स्पष्टता और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सलाम एक सफल कहानी है। क्योंकि इस कहानी का यथार्थ हिन्दू समाज की जटिलता को गम्भीर रूप से पुनर्भाषित करती है लेकिन कहानी में फेन्टेसी का प्रभाव भी है, जो यह सच उजागर करता है कि अभी तक जो लोग अस्पृश्यता के दंश से बचे रहे, वे अपनी मानवतावादी सोच के वशीभूत होकर मानसिक स्तर पर उस दंश का अनुभव करते हैं तो उनकी क्या अन्तक्रिया होती हैं? हिन्दी में शायद यह इस ढंग की पहली कहानी है जो एक दलित द्वारा लिखी गयी है। इस कहानी का मूलभाव आत्मसम्मान की शिक्षादत्त चेतना है। बारीक विश्लेषण किया जाये तो कुछ विसंगतियाँ विरोधाभास और अस्वाभाविकताएँ भी चिह्नित की जा सकती हैं।

सलाम का उदाहरण देखें—"सहर में चूतिया बणाना...मैं तो आदमी कू देखते ही पिछाण (पहचान) लूं...कि किस जात का है?"[11]

"ओ, सहरी जनखे हम तेरे भाई हैं? साले जबान सम्भालकर के बोल, गाँड में डंडा डाल के उलट दूँगा। जाके जुम्मन चूहड़े से रिश्ता बणा। इतनी जोरदार लौंडिया लेके जा रे हैं सहर वाले, जुम्मन के तो सींग लिकड़ आए हैं। अरे, लौंडिया को किसी गाँव में ब्याह देता तो म्हारे जैसों का भी कुछ भला हो जात...।"[12]

---

11. सलाम (कहानी) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 12
12. सलाम (कहानी) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 13

दोनों हाथ कूल्हों पर टिका कर सीना चौड़ा करते हुए बोला, "यो पैसे सहर में जाके दिखाणा। दो पैसे हो गए जेब में तो सारी दुनिया को सिर पे उठाए घूमो...ये सहर नहीं ये गाँव है...यहाँ चूहड़े-चमारों को मेरी दुकान में तो चाय न मिलती।...कहीं और जाके पिओ।"[13]

इस तरह "सपना" कहानी का शीर्षक मन्दिर रहा होता तो अधिक सार्थक होता क्योंकि दलितों द्वारा मन्दिर निर्माण में विशेष पहल-कदमी करने के बाद जब मन्दिर बनकर तैयार होता है तो अनुष्ठान के समय उनकी जात आडे आ जाती है और उनका स्थान जाति के अनुसार जूतों-चप्पलों के आस-पास निश्चित कर दिया जाता है। इतना ही नहीं अपितु उन्हें जूतों की रखवाली करने का काम भी सौंप दिया जाता है। इस मन्दिर व्यवस्था में दलितों की हैसियत क्या होती है? यह तथ्य उजागर होता है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि मन्दिर का निर्माण शिक्षा संस्थान की योजना को रद्द करके किया गया है। जो एक सपना साकार होता दिखाया गया है।

इस कहानी के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

"पत्नी ने उलाहना देते हुए कहा और शिरोडकर खुशी से उछल पड़ता है और वह कहता है...ठीक कह रही हो...मन्दिर तो होना ही चाहिए...कोई एक मन्दिर नहीं बल्कि चर्च, गुरुद्वारा, मस्जिद सब कुछ एक साथ होना चाहिए।

साझा। साझी संस्कृति के साझे मन्दिर...कितना अच्छा होगा, मन्दिर में शंखध्वनि होगी, मस्जिद में अजान, चर्च में घंटा बजेगा, गुरुद्वारे में शबद कीर्तन होगा। सचमुच एक आदर्श जगह होगी।"[14]

---

13. 'सपना' कहानी, सलाम कहानी संग्रह — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 22
14. 'सपना' कहानी, सलाम कहानी संग्रह — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 29

ऋषि कहता है..."हाँ ब्राह्मण हूँ...तो क्या इसलिए गौतम को पंडाल में सबसे पीछे बैठने के लिए बाध्य करूँ...नहीं नटराजन जी...इस मन्दिर को खड़ा करने में उसका भी हाथ है...यह मन्दिर उसका भी है...वह वहाँ से नहीं उठेगा, इतना समझ लीजिए नटराज जी।"

"बैल की खाल कहानी" प्रश्न खड़ा करती है कि अपने परम्परागत कार्यों में निष्ठा और लगन रखने पर भी इनका जीवन-स्तर कितना सोचनीय है, यह बदलाव के सपना से अनभिज्ञ लोग हैं। इनके लिए कोई सम्मानित काम सोचना भी कल्पनातीत है। जहरफोस बनिया की सलाह नहीं मानते जिसमें वह कहता है—

"यह पुड़िया ले जाओ, जिस जानवर को खिलाओगे टें बोल जाएगा।" जाहिर है कि इतिहास की परम्परा में दलित जीवन रक्षा के प्रति सदैव संवेदनशील और अहिंसक रहा है। ट्रक की चपेट में आने वाली बछड़ी में उन्हें किसी बच्चे की छवि दिखाई देती है। वे दलित स्वभाव के अनुसार उसकी सेवा करते हैं।

अतः इस कहानी का संदेश महान है और अनुकरणीय है। वाल्मीकि जी ने पात्रों का यथार्थ, जीवंत और प्रामाणिक चित्र खींचा है। चमारों को मरे हुए पशु पर जीविकोपार्जन होने पर भी उनमें मानवता है जो इस कहानी में दिखाया गया है। उदाहरण—

"कहाँ मर गये थे भोसड़ी के...तड़के से ढूंढ़-ढूंढ़ के गोड्डे टूट गए हैं। और अब आ रहे हो महाराजा की तरियो...इस बैल को कौन उठायेगा...तुम्हारा बाप...।"[15]

---

15. 'बैल की खाल', सलाम कहानी संग्रह — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 33

"क्या टेम आ गया है। इब तो ढोर-डंगर बीना मरते...। "जिबते यो जिनावरों का डॉक्टर गाँव में आया है...म्हारे तो पेट पर ही लात मार दी है सोहरे ने।"[16]

"भय" कहानी में भय कहानी का मूल तत्व है। यह पात्र को स्वतः बोध की शक्ति नहीं प्राप्त करने देता। वह इस मायने में आधुनिक और उन्नत लगता है कि वर्ण-व्यवस्था के प्रथम स्तर के व्यक्ति रामप्रसाद तिवारी से मित्रता बना रखी है और अपनी जातिगत असलियत छिपा रखी है। उसी संकल्प को अंजाम देने की कटिबद्धता, मानसिकता द्वन्द्व और भयानक भयाक्रान्ता की स्थिति में पहुँचा देती है।

कहानीकार की सूक्ष्म दृष्टि घटनाक्रम को एक स्वाभाविक मोड़ देने की क्षमता और दिशा तथा दशा का स्पष्ट प्रतिबिंब उद्घाटित करने की कला निराली है। इस कहानी के कुछ उदाहरण हैं देखें—

कालू आँखें तरेरकर कहता है—"पांच किलो मीट ही चाहिए तो बाजार में बहुत दुकाने हैं जाके खरीद लो सस्ता पड़ जायेगा।"[17]

'कहाँ जाय सतीश?' में अछूतों के प्रति हिन्दू और मुस्लिम समाज में कोई सम्मानीय स्थान नहीं है। इस घिनौने दृष्टिकोण से सतीश के पास कोई विकल्प नहीं बचता जिसे अपनाकर वह जीवन की राह पर निकल पड़े। उसके पास तीन रास्ते हैं और तीनों में कोई भी रास्ता उसे उसकी मुक्ति की ओर नहीं ले जाता। यही इस कहानी की विडम्बना है और यही कहानीकार की मूल चिन्ता भी है।

कहानीकार की भाषा को देखें..."पता नहीं भैन जी, उसके मन में क्या था? दो अच्छर क्या पढ़ लिये वो न घर का रह्या न घाट का। हमने तो यो ही कह्या था,

---

16. 'बैल की खाल', सलाम कहानी संग्रह — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 34
17. 'भय' कहानी, 'सलाम' कहानी संग्रह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 40

पढ़ने-लिखने में क्या धरा है, कुछ काम-धन्धा कर ले, कोई नौकरी मिल जागी तो तावले (जल्दी) ही साद्दी (शादी) कर देंगे। पर वो तो बिना कुछ कहे घर से चला गिया। भतेरा ढूंढा...ईब पता चला कि वो वहाँ रह रा।"[18]

इस प्रकार देखते हैं कि दलित रचनाकार विशेषकर अपने कथ्य के प्रति जागरूक हैं और शिल्प तो उनकी रचनाओं में स्वतः समाहित हो जाता है। शिल्प के प्रति उनका कोई आग्रह-दुराग्रह नहीं है। उनकी भाषा भी आम जनता की भाषा हैं उनकी भाषा-शैली में जहाँ-तहाँ मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि देखने को मिलती हैं। पात्रों: के अनुसार भाषा का गठन या संयोजन अवश्य देखने को मिलता है। सवर्णों की भाषा और दलितों की भाषा में अन्तर साफ दिखाई दे जाता है।

आज के दलित कथाकार कथा जगत को आच्छादित करने वाली वर्णोंचित भ्रामक स्थितियों को अनावृत कर सत्योद्घाटन कर रहे हैं। वे जोखिम भरे दुर्गम पंथों की अंधेरी गुफाओं से गुजर रहे हैं। ऐसे में वे गैर से सावधान और अपनों के ईर्ष्या, भड़ास और साथ न चल पाने की अक्षमता और अदूर दृष्टता से पैदा हुई हताशा की व्यक्तिगत आक्रामक को भी झेल रहे हैं और कथा साहित्य को प्रगति की दिशा में अग्रसरित कर रहे हैं।

(ख) दलित उपन्यासों का कथ्य और शिल्प

दलित उपन्यासों का कथ्य और शिल्प भी अन्य विधाओं की भांति प्रभावशाली है। इसमें भी उपन्यासकार पात्रानुकुल भाषा एवं शैली का प्रयोग किया है। इसमें दलित समस्याओं को लेकर गहरी सोच प्रकट की गई हैं, उस पर विचार-

18. कहाँ जाय सतीश? (कहानी) सलाम कहानी संग्रह — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 49

विमर्श करके उसके निराकरण की दिशा की ओर आगे कदम बढ़ाया गया है। यहाँ कुछ उदाहरण के द्वारा इन्हीं संदर्भों को उद्‌घाटित किया गया है।

सुक्खा की असहनीय सोच एवं वेदना को जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में "दुक्खम-सुक्खम अपनी तो देख भी लें पर चन्दन का क्या होगा, क्या उसकी पढ़ाई अधूरी छूट जाएगी? क्या उसकी इच्छाओं का जिंदे ही गला घुट जाएगा? क्या ऊँचे होदे तक पहुँचने का उसकी उम्मीदों का महल रेत के ढेर की तरह बिखर जाएगा। क्या मेरे जीते जी मेरे इकलौते बेटे को अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर मेरी तरह शोषण और बर्बरता की चक्की में पिसना पड़ेगा? क्या उसे भी गुजर-बसर के लिए लाला जमीदारों के चांटे और दुधमुहे बच्चों तक की गालियाँ सहनी पड़ेंगी? क्या उसे गुड़ की डली या प्याज की गंठी के साथ रूखी-सुखी रोटी हलक के नीचे उतारकर दिन गुजारने पड़ेंगे? क्या उसे भी मेरी तरह पशुवत् जीवन जीना पड़ेगा?"[19]

उपन्यासकार को विशेष अन्तर शहर और गाँव की स्थिति में नजर नहीं आता। दोनों स्थानों पर वहीं शोषण, अत्याचार, भ्रष्टाचार तथा समस्याएँ दिखाई देती हैं। इसलिए वह लिखता है..."चन्दन जब तक पढ़ने के लिए गाँव से शहर आया तो उसके मन में एक कल्पना थी शहरों को लेकर। वह सोचता था कि शहर का जीवन गाँव के गन्देपन से भिन्न होगा एकदम साफ-सुथरा। न वहाँ गाँवों की तरह आर्थिक तंगी होगी न रोटी और कपड़े की समस्या। न पुलिस और कानून का आतंक होगा, न ठाकुर-जमीदारों की हिंसा और आतंक का मनमाना राज। न सेठ-साहूकारों के सूद की निर्मम मार होगी, न ऊँच-नीच और छुआ-छूत का जहर और न चौरी, डकैती या किसी अन्य तरह की असुरक्षा ही। लेकिन थोड़े दिनों में ही उसकी कल्पना छिन्न-

19. छप्पर (उपन्यास) — जयप्रकाश कर्दम, पृ. 32

भिन्न हो गई। शहर आने पर उसे पता चला कि शहरों में भी केवल थोड़े से लोग ही सुखी और सम्पन्न हैं, शेष लोग अभाव और उत्पीड़न का जीवन जीते हैं।...शहर में भी बहुत से दलित और दरिद्र लोग बिना छुकी-भुनी सब्जी खाते हैं या केवल पानी या चाय के साथ नमक की रोटियाँ गले से नीचे उतारकर जिंदा रहते हैं। फाका भी रह जाता है, बहुत से घरों में। यहाँ भी तन ढकने के लिए कपड़ा नहीं है आदमी के पास। यहाँ भी गाँवों की तरह बच्चे रेत-मिट्टी में खेलते नंगे घूमते हैं। बहुत सी औरतों के पास यहाँ भी मैली-कुचैली सी सिर्फ एक साड़ी होती हैं, सस्ती-सी-कच्चे पक्के रंगों की। दूसरी साड़ी के अभाव में बहुत-सी औरतें नहा-धो तक नहीं पाती महीनों। इतना ही नहीं बहुत सी गर्भवती औरतों को फुटपाथ पर खुले आकाश के नीचे बच्चे पैदा करने पड़ते हैं। यह एक बाध्यता है। एक त्रासदी है उनके जीवन की, जिसे नियति का आदेश मान बैठे हैं ये लोग।

रही काम की बात सो दिन-रात कमरतोड़ मेहनत करके भी आदमी को दो जून की रोटी मयस्सर नहीं हो पाती ठीक से। बीस-तीस रुपये का काम कराकर मालिक छ:-सात रुपये देता है...दिहाड़ी के। भूखा पेट क्या करे जो मिल जाए उसी से सन्तोष करना पड़ता है। ज्यादा दिहाड़ी की बात करें भी कैसे क्या पता गालियाँ और "साले चले आते हैं नखरा दिखाने लीडर बनते हैं हरामजादे। कामधाम कुछ करेंगे नहीं और चाहेंगे कि फैक्टरी इनके नाम हो जाए।"[20]

दलितों के उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने पर सवर्णों को जो भय दिखाई दे रहा उसी का संकेत यहाँ देखने को मिलता है। दलितों में यह चेतना आ गई है कि उच्च शिक्षा के द्वारा सामाजिक सम्मान पाया जा सकता है। सवर्ण दलितों को क्यों पढ़ने देना

---

20. छप्पर (उपन्यास) — जयप्रकाश कर्दम, पृ. 14-15

नहीं चाहते इस रहस्य को ठाकुर हरनामसिंह अपनी बेटी रजनी से बताये थे कि उन्हें अकेले चन्दर के पढ़ने-लिखने से कोई एतराज नहीं है, कहीं नौकरी कर ले उस पर भी आपत्ति नहीं है, "लेकिन चन्दन की देखादेखी यदि सब चमार-चूहडे पढ़-लिख जाएँ और सबके सब बाहर जाकर नौकरी करने लगे तो कल तो हमारे खेतों और घरों में कौन काम करेगा?"[21] इसलिए सवर्ण समाज नहीं चाहता कि दलितों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करें।

"हमारा समाज धर्म द्वारा प्रेरित और संचालित है, हमारी सामाजिक स्थिति, धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है। धर्म-ग्रंथ ही हमारे शोषण और अत्याचार की जडें है।"[22]

दलित वर्ग अपनी समस्या के मूल तक पहुँच गये हैं और उसका समाधान भी ढूँढ़ लिये हैं। इसलिए तो वे कहते—"इन जड़ों को उखाड़ फेंकने की जरूरत है।"[23]

वह कहती हैं-"काहे नहीं एक बार सभै औरत वन के जुटा के राँची जायके घेरल जाय सी.एम.डी. के औरतन के बदले औरत के ही नौकरी देवे पर लागत रोक के हटाते खातर। पहलकी के रहते दूसर डौकी (पत्नी) लाने वाले मर्द के नौकरी से हटाय खातर बचवन के देख-रेख के खातिर काम के टैम में दाई-नर्स के इंतजाम करें माँग रखल जाय।"[24]

मौसी का जीवन त्रिकोणात्मक है। उसने कभी अपनी पत्नी और माँ के रूप में नहीं जिया। जवानी में ही मौसी ने माँ के जैसा काम संभाल लिया था और बन गई थी,

---

21. छप्पर (उपन्यास) — जयप्रकाश कर्दम, पृ. 38
22. छप्पर (उपन्यास) — जयप्रकाश कर्दम, पृ. 44
23. छप्पर (उपन्यास) — जयप्रकाश कर्दम, पृ. 44
24. सीता (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 94

मौसी। उनके चरित्र को उजागर कर सके, ऐसे उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं..."कई घर बदले थे बुआ ने। कई फूफा भी बदले। सबने उसे प्यार दिया। फूफा बदल सकते हैं, पर बुआ नहीं बदलेगी।"[25]

"मौसी तो आदिवासी समाज की मुक्त महिला थी।...जबान उसके लिए अहम थी। यह मूल्यों का आदर ही उसके लिए परिचायक है। यही आदिवासी समाज को दूसरों से अलग करता था।"[26]

"मौसी की दोहरी जिन्दगी एक त्रिकोण में घूमती रही। सलीम-अब्बा-शहजादा।"[27] "उसका ठहराव बन निकला था। इसलिए वह अब सवालों के दलदल में फिर फंसना नहीं चाहती थी। बस वह जीना चाहती थी। उसकी जिन्दगी का एक वरक उलट गया। अध्याय तो रोज बदलने हैं, हर औरत की जिन्दगी में।"[28] उसने अपनी जवानी के दिन गला दिए। उस बूढ़े मौलवी की सेवा में, शहजादे को पालने में और सलीम के इंतजार में, दूध नहीं था उसकी छातियों में। पर ममता के घूंट जरूर थे उसकी चूंचियों में।"

"आदिवासी महिला क्षणजीवी होती हैं। मौसी भी उसी प्रकृति की थी। कल की चिन्ता वह कभी नहीं करती थी। देखो क्या होता है, अभी तो भाई-भाभी पर भरोसा है। मोहन पढ़ ही रहा है। कल की कल देखेंगे।"[29] "प्रेम उसने सलीम से किया था। बस, अब फिर प्रेम ही करना चाहती थी। अब वह चालीस पार कर रही

---

25. मौसी (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 23
26. मौसी (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 27
27. मौसी (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 35
28. मौसी (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 53
29. वही (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 60

थी। इस उमर में अकेलापन अधिक खलता है। अपना कोई बच्चा भी न था। मोहन पर जान देती थी।"[30]

"मौसी सलीम की प्रेमिका, सलीम की माँ, सलीम के बाप (मौलवी) की बीबी, भगवान सिंह की रखैल बनी थी, उसे सभी ने छला था, साथ ही मोहन ने भी, जिसे वह बेटे समान मानती आ रही थी। फिर उसने एक दुसाध माधो को अपना बनाना चाहा, परन्तु उसके बिरादरी वालों ने माधो पर हमला किया, माधो मौसी के प्रेमजाल से हट गया। मौसी ने उसके बाद निर्णय लिया था, खुद गढ़ेगी वह अपना भविष्य। औरत जात का भविष्य। वह तो जन्मजात माँ है। ममता उसकी रग-रग में भरी है। वह थोपती रही सबको आज तक। अब वह पोसेगी उन्हें जिन्हें उसकी जरूरत है।"[31]

उपन्यास का अन्त सुखात्मक है। साथ ही नये विचारों से पुष्ट है। "भगवान सिंह फिर से अन्त में मिल जाते हैं। क्योंकि मौसी के बिना भगवान सिंह का अब कोई नहीं, रुपये पैसे के बिना तो चल, न तू बड़ जात, न हम छोट जात दोनों मजदूर।"[32]

(ग) दलित आत्मकथाओं का कथ्य और शिल्प

अपने-अपने पिंजरे आत्मकथा में यह दिखाया गया है कि हर आदमी अपने पिंजरे में जीता है और उस पिंजरे से कितना भी फड़फड़ाए किन्तु वह जिन्दगी के अन्त तक वह उसमें से नहीं निकल पाता।

---

30. वही (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 66
31. मौसी (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 73
32. मौसी (उपन्यास) — रमणिका गुप्ता, पृ. 74

मोहनदास नैमिशराय जी की यह आत्मवृत्ति हिन्दी साहित्य में एक सर्वथा नवीन प्रयास कहा जा सकता है। महीपसिंह ने अपने-अपने पिंजरे की भूमिका में लिखा हैं "मोहनदास नैमिशराय की यह कृति इस अर्थ में आत्मकथा न होकर आत्मवृत्त है। उन्होंने अपने जीवन की उन तल्ख ओर निर्मम सच्चाइयों को इसमें उकेरा है। इसका सबसे बड़ा कारण व्यक्ति के ऊपर सडी-गली व्यवस्था का वह आरोपण है जिसके प्रति वह विवश होकर सब कुछ सहते जाने के लिए अभिश रहा है।"

'अपने-अपने पिंजरे' की भाषा-शैली उपन्यासात्मपरक है। लेखन ने पूरे मेरठ के चमारों की पीड़ा को विस्तार में यथार्थ के साथ शब्दबद्ध किया है। नैमिशराय जी अपनी वर्गीय यन्त्रणा को लेकर पूरी आत्मकथा में चिन्तित दिखाई पड़ते हैं। जातीय उपेक्षा की स्थिति हर स्थान पर विद्यमान रही है। चाहे गाँव हो या शहर अथवा मठ-मन्दिर या गंगा का घाट ही क्यों न हो। यहाँ तक मेले में आये हर तीर्थ-यात्रियों को भी जातिभेद की बीमारी परेशान करती थी। हमारी जाति के लोग किस तरफ हैं, पता चल ही जाता था?

इस आत्मकथा में कुछ अप्रासंगिक घटनाओं को जोड़कर फिजूल में विस्तार किया है। जैसे—नपुसंक भाई, भाभी, वेश्याओं, सरवंती, बम्बई में दो बहनों का किशोरावस्था का स्वाभाविक आकर्षण है। मेरे जीवन में अनेक काली महिलाएँ आईं। सामने कोई मोटी औरत अपने भारी चूतड़ खोले वही कर रही थी जो मैं करने जा रहा था। आदि वाक्यों को डालने के क्या मायने हैं? क्या स्त्री को देखने की यह दृष्टि अनुचित नहीं है? ऐसे विचार लेखक को कुण्ठित साबित करते हैं। जो भी हो इससे हल्कापन आया है और लेखक गैर-जिम्मेदार साबित हुआ है।

जब भी हम शिल्प की बात करते हैं तो दलित साहित्य में भाषा की कोई जागरूकता नहीं है, उसमें गाली-गलौच आती है और वह इसलिए कि दलित जो कि निम्न वर्ग में से आया हुआ है, इसलिए गालियाँ आना स्वाभाविक बात है। जैसे— उदाहरण के तौर पर देखें तो..."होगा कोई चोद्दा।"[33]

"चुप रे लोंरा!"[34]

नई माँ ने अपने बेटे को डांट मारी।

"भैंन्ना यू लौंडा तो चौबीस घड़ी बस पतंगों में ही लगा रहवै है।"[35]

"अबे भाग जा लौंडे पुलिस पकड़ लेगी।"[36]

नैमिशराय जी ने बिम्बात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। यथा—

"उस समय अधिकांश पुरुष ही थे जो लाइन के आस-पास अपने-अपने चूतड़ खोले हग रहे थे।"[37]

भाषाई सम्प्रेषणीयता कथोपकथन की गरिमा को बरकरार रखते हुए रवानगी पूर्ण हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दलित साहित्यकारों ने अपने आनुभूतिक सच्चाई को अपनी ही भाषा में व्यक्त किया है।

इसमें मेरठ शहर का इतिहास बताया गया है, यहाँ डायरी, शिल्प, मेरठ से मुम्बई तक ट्रेन सफर में यात्रा-वृतांत, अपने-अपने पिंजरे की भूमिका में महीपसिंह के अनुसार आत्मवृत्त है। मुसलमानों का व्यवहार और स्कूल के अनुभवों में अनुभूति की प्रामाणिकता है। कई जगह पर यथार्थवादी शिल्प को अपनाया गया है।

---

33. अपने-अपने पिंजरे-(आत्मकथा) — मोहनदास नैमिशराय, पृ. 14
34. वही, पृ. 120
35. वही, पृ. 120
36. वही, पृ. 135
37. अपने-अपने पिंजरे-(आत्मकथा) — मोहनदास नैमिशराय, पृ. 135

वाल्मीकि का भाषा पर पूरा अधिकार है किन्तु कहानीकार होने के नाते उनकी शैली और शब्दों का गठाव साहित्यिकता के आग्रह से बंधा रहा है।

इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एकांगी और सिर्फ आत्मगत ही नहीं है। बल्कि समष्टिगत भी है। भारतीय समाज का लगभग पूरा चरित्र इसमें समाया हुआ है। वाल्मीकि जी ने अपने कष्टदायक जीवन की व्यथा-कथा को आत्मकथात्मक शैली में सहज-स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त किया है। लेखक के रचनाकौशल से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस आत्मकथा की भाषा संयत है। शब्द में कंजूसी बरती गई हैं, किन्तु गंभीरता शुरू से अन्त तक बनी रही है। यह कृति का एक उत्कृष्ट पहलू है। फूहड़ शब्दावली के लिए बदनाम दलित लेखक के मुँह से बदनामी का धब्बा इस आत्मकथा ने साफ किया है। कहीं-कहीं संस्कारों में शेष रहे अंधविश्वास के संकेत मिलते हैं। जैसे माँ के शरीर में दुर्गा समा गई, अर्थात् लेखक इस पिशाचगी में विश्वास रखता है कि कोई दुर्गा है जो माँ के शरीर में प्रविष्ट हो सकती है। कहीं-कहीं इसकी अधिक साहित्यिकता विशिष्ट गर्व के लिए गढी गयी भाषा लगने लगती है। इन कमजोरियों के बावजूद भी इसकी भाषा में एक प्रवाहमयता है, जिसमें घटनाएँ निरन्तर बहती रहती हैं। भाषा में सरलता, सहजता, प्रवाहमयता आदि का सभी गुण मौजूद हैं। इसके कारण कथा-प्रवाह सुचारु प से अग्रसर होता रहता है। लेखक ने अपने जीवनानुभवों के चित्रण में कहीं क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया है। किन्तु अत्यन्त ही सीधी सादी स्पष्ट भाषा में इन्हें अभिव्यक्ति प्रदान की है। लेखक की अभिव्यक्ति की एक विशिष्टता यह भी है कि आम-आदमी को भी इसका अर्थघटन करने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। यही कारण है कि यह कृति सवर्णों के प्रति सम्बोधन रचना होने के बावजूद भी वर्गभेद मिटाकर मानवीय गरिमा के मूल्यों को सहज रूप से उद्घाटित करती है।

वाल्मीकि जी ने पृ. 14 पर लिखा है कि—"ऐसी गालियाँ जिन्हें यदि शब्दबद्ध कर दूँ तो हिन्दी की अभिजात्यता पर धब्बा लग जाएगा। क्योंकि मेरी एक कहानी 'बैल की खाल' में एक पात्र के मुख से गाली दिलवा देने के हिन्दी के कई बड़े लेखकों ने नाक-भौं सिकोडी थी।" वाल्मीकि जी की आत्मकथा में कई पात्रों के मुख से गाली सुनाई देती है। इससे स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य शिल्प की जागरूकता नहीं रखता और नहीं उसे जरूरी समझता है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

नाम लेकर पुकारने की किसी भी सवर्ण को आदत नहीं थी, इसलिए उनके लिए—"उम्र में बड़ा हो तो "ओ चूहड़े" बराबर या उम्र में छोटा है तो "अबे चूहड़े के" यही तरीका या सम्बोधन था।"[38]

"चौधरी जी, ईब तो सब खाणा खा के चले गए...म्हारे जकातों (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो वे बी तो इस दिन का इन्तजार कर रे ते।"[39]

"टोकरा भर तो जूठन ले जा रही हैं...ऊपर से जकातों के लिए खाना माँग री हैं? आपणी औकात में रह चूहडी। उठा टोकर दरवाजे से और चलती बन।"[40]

"सूअर हमारे जिन्दगी का एक अहम हिस्सा थे। शादी-ब्याह, हारी-बीमारी, जीवन-मृत्यु सभी में सूअर की महता थी। यहाँ तक कि पूजा-अर्चना भी सूअर के बिना अधूरी थी। आँगन में घूमते सूअर गन्दगी के प्रतीक नहीं बल्कि सामाजिक समृद्धि के प्रतीक थे, जो आज भी वैसे ही हैं।"[41]

---

38. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 12
39. हिन्दी दलित साहित्य एक अध्ययन - जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 61
40. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 21
41. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 24

वाल्मीकि जी वर्णित प्रसंग की गालियों के प्रतीक से यह साबित करते हैं कि शिक्षित होकर भी अध्यापक जातिभेद की भावना से मुक्त नहीं होता। वह द्रोणाचार्य की परम्परा में आज से एकलव्यों को राजकीय शिक्षा-संस्थानों में शिक्षा ग्रहण करना दुर्लभ कर देते हैं। यह आत्मकथा संकेत करती हैं कि आत्मकथाकार की भांति वाल्मीकि जाति के तमाम बच्चे शिक्षक के रौद्र रूप से भयभीत हो शिक्षा लेना ही छोड़ देते हैं। छात्रों को पढ़ने से अधिक मारने-पीटने में लगे शिक्षकों की संख्या आज भी कम नहीं है। ओमप्रकाश जैसे बच्चे माता-पिता की जागरूकता एवं स्वयं की पात्रता के कारण इतने दमन के बावजूद पढ़-लिख कर आगे आ जाते हैं। छात्र ओमप्रकाश "द्रोणाचार्य" नामक पाठ पढ़ाये जाने के दौरान अपने मन में उठे प्रश्न के अध्यापक से पूछ बैठता है जो उसका विद्यार्थीय अधिकार है। वाल्मीकि जी लिखते हैं—"अश्वत्थामा को तो दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का मांड़। फिर किसी भी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया? किसी महाकवि ने जीवन पर एक भी शब्द क्यों नहीं लिखा?" यही प्रखर तर्क-शक्ति ओमप्रकाश को आगे चलकर दलित साहित्यकार बना देती है। अध्यापक श्री चीखकर बोल उठते हैं—"चूहड़े के, तू द्रोणाचार्य से अपनी बराबरी करे हैं...ते तेरे ऊपर मैं महाकाव्य लिखूँगा..."[42] और मास्टर वाल्मीकि को मुर्गा बनाकर उसकी पीठ पर छड़ी से मारता है।

यहाँ अश्वत्थामा और द्रोणाचार्य के पौराणिक मिथकों द्वारा विद्रोह और विरोधात्मक स्वर देखा जा सकता है। दलित वर्ग की पीड़ा की अभिव्यक्ति भी दिखाई देती हैं। मास्टर ने मुर्गा बना दिया यहाँ पर मुर्गा दलितों के प्रतीक के रूप में आया है। द्रोणाचार्य यहाँ सवर्ण के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में आये हैं। द्रोणाचार्य ने एकलव्य

---

42. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 34

जैसे दलित वर्ग के पात्रों का शोषण करके जो अँगूठा काट लिया था वह भी दलित वर्गों का शोषण है वैसे ही आज भी द्रोणाचार्य दलित वर्ग को आगे आने देने में कई साजिशें की।

"साहित्य में नर्क की सिर्फ कल्पना है। हमारे लिए बरसात के दिन किसी नारकीय जीवन से कम न थे। हमने इसे साकार रूप में जीते-जीं भोगा हैं। ग्राम्य जीवन की यह दारुण व्यथा हिन्दी के महाकवियों को छू भी नहीं सकी। कितनी बीभत्स सच्चाई हैं यह।"[43] यहाँ पर भोगा हुआ नारकीय जीवन है जो यथार्थवादी शिल्प के जरिए उद्‌घाटित हुआ है।

(घ) दलित नाटकों का कथ्य और शिल्प

"कठौती में गंगा" एक भला चंगा नाटक है। यह जीवनीपरक नाटक है। इसके लेखक डॉ. एन. सिंह और ललित मैन्दोला है। "कठौती में गंगा" जो उनका नाटक है वह हमारी भारतीय संस्कृति के एक महान सन्त "रैदास" पर आधारित है। 15वीं शताब्दी में बनारस के पास बडूहाडीह में जन्मे रैदास एक सन्त कवि थे। जिन्होंने अपनी वाणी द्वारा शताब्दियों से दलित होते हुए बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय की जिजीविषा का अमृत पिलाकर आत्महीनता से मुक्त करने का प्रयास किया। रैदास के जीवन और उपदेशों पर ही यह नाटक आधारित है।

इस नाटक में भाग्य, भगवान और पुनर्जन्म एवं ईश्वरीय चमत्कार का चित्रण भी उसी प्रकार हुआ है जैसे—हिन्दू धर्म और साहित्य में आए हैं। ऐसा इसलिए किया गया है, कि हिन्दू प्रचार तन्त्र ने रैदास के सम्बन्ध में किंवदतियों के रूप में इन मान्यताओं का दलितों में भी इस हद तक प्रचार कर दिया है कि वे भी उन्हें अब

---

43. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 35

सत्य-सा मानने लगे हैं। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहावत "मन चंगा तो कठौती में गंगा" जो रैदास के द्वारा कही गई उक्ति है इसके केन्द्र में हैं।

जाति-पांति का व छुआछूत का भेद-भाव उस समय बहुत था, जिसे संवाद-शैली के द्वारा नाटककार व्यक्त करता है। एक जगह पर नाटककार ने लिखा है, जहाँ पर एक ब्राह्मण के घर रैदास को उनकी माँ पढ़ने हेतु ले जाती है। यथा...

"रैदास – गुरुदेव प्रणाम।

गुरुजी – आयुष्मान भव। कैसे आना हुआ।

रैदास – मैं भी शिक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ गुरुदेव।

गुरुजी – तुम! तुम यहाँ इन सबके साथ बैठोगे?

रैदास – (बालसुलभ मुद्रा में) जैसे सब बैठे हैं।

गुरुजी – तुम्हें पता है। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों के बालक हैं।

रैदास – आपके पांव पड़ता हूँ गुरुजी।

(दूसरे गुरुजी का आना)

गुरुजी – अबे जाता है...(रैदास को डंडा मारना)"[44]

इस प्रकार निम्न जाति के लोगों को पढ़ने का भी अधिकार नहीं था। अपमानित होकर वापस आना पड़ता था। इसी का संकेत इस कथन से स्पष्ट होता है।

---

44. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 36

शूद्रों को पूजा-पाठ का अधिकार नहीं था, इसलिए उच्च वर्ग के लोग रैदास का विरोध कर रहे थे, जिसका स्पष्टीकरण इन संवादों से स्पष्ट होता है। यथा.....

"एक – उसे ठाकुर जी की पूजा करनी भी चाहिए या नहीं?

दूसरा – एक शूद्र को ठाकुर जी की पूजा करने का अधिकार है ही नहीं।

चौथा – क्या जमाना आ गया, चलो महाराज के पास चलें।...

एक – महाराज घोर अन्याय

दूसरा – आपके राज्य में एक शूद्र ठाकुर जी की पूजा कर रहा है।

पहला – यह घोर अन्याय है।

चौथा – भगवान की आरती उतारता है और लोगों को उपदेश देता है।"[45]

इस प्रकार यहाँ नाटककार निम्न जाति के लोगों के द्वारा किया गया भजन-कीर्तन भी सवर्णों की पूँजी हो उस पर किसी अन्य का अधिकार ही न हो, इस बात पर प्रकाश डाला है। तभी नाटककार ने रैदास के मुख से कहलवाया है...

"हरि को भजै सौ हरि का होय।
जात-पांत पूछै नहि कोय।"[46]

नाटककार ने यहाँ बताया है कि मध्ययुगीन संत कवियों को एक ओर से ब्राह्मणों के द्वारा परेशानियाँ होती थी और भक्त साबित करने में परेशानियाँ होती थीं।

---

45. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 36
46. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 36

"अन्तिम अवरोध" नाटक में एन. आर. सागर ने अर्जुन और चित्रांगदा (मनिपुर की महारानी) के पुत्र का चित्रण भली-भांति उभारने का सफल प्रयास किया है। नाटक पूरा का पूरा राजमहल से लेकर युद्ध के चित्रण तक दिखाया गया है। पहले ही दृश्य में लेखक ने चित्रांगदास का राजमहल दिखाया है जहाँ पर माता और पुत्र बभ्रुवाहन को लेकर संवाद बताया है। यह पूरा नाटक आठ ही दृश्यों में चित्रित हुआ है। लेकिन यहाँ तक माना जाता है कि इस नाटक में कहीं पर भी दलित चित्रण हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। हाँ, लेकिन कहीं-कहीं इस बात की भनक-सी लगती है। जैसे-...चतुर्थ दृश्य में अर्जुन बभ्रुवाहन के एक उच्च राजवी मानने को तैयार नहीं होता। जाहिर है कि ऐसा लगता है कि जैसे वह निम्न जाति का हो। जब यज्ञ का घोड़ा बभ्रुवाहन बाँध देता है तब..."यज्ञ का अश्व पकड़ने की धृष्टता करने वाले बभ्रुवाहन अपने अपराध की क्षमा याचना करते हुए अश्व लौटा दो और प्रायश्चित्त के रूप में मणिपुर का राजमुकुट सम्राट की सेवा में प्रस्तुत करो।"[47]

यहाँ पर सीधे रूप में तो नहीं लेकिन नाटककार ने "राजमुकुट सम्राट की सेवा में लौटा दो" कहकर यही चित्रित किया है कि उच्चवर्ण का कितना अधिक बल है तुम अभी नहीं जानते। चूंकि बभ्रु भी अर्जुन का ही पुत्र था। लेकिन वस्तुतः अर्जुन जिसे अपना पुत्र मानने के लिए तैयार नहीं थे। बाद में नाटककार ने दोनों पक्ष के सेनापतियों के बीच का युद्ध दिखाया है। यहाँ पर मिथक को टूटते हुए दिखाया है।

हिन्दी साहित्य में दलित लेखकों ने दलित विद्या को पौध से उठाकर विशाल वटवृक्ष में प्रतिष्ठित किया है। यह केवल स्वातन्त्र्योतर लेखन काल की ही नहीं, अपितु इक्कीसवीं सदी की बहुत सारी विलक्षणताओं में एक विशिष्ट विलक्षणता है। विद्या

---

47. जूठन (आत्मकथा) — ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 37

निर्णयन के सभी तत्व विद्रोह-विस्फोट, नकार स्वर, मानवीयता, सामाजिक चरित्र-चित्रण, देशकाल वातवरण, भाषा शैली आदि इस पौध में दिखाई देने के कारण दलित साहित्य विद्या परिनिष्ठित हो गयी। दलित साहित्य विद्या को सरताज चढ़ाने तथा उसे संरक्षण देने में हिन्दी साहित्य यात्रा में विपुल कलमगारों ने योगदान दिया है इन सभी रचनाधर्मियों की सर्जना भारतीय साहित्य में उल्लेखनीय है।

आज दुविधाजनक परिवेश में कथनी और करनी में विसंगति पाकर विषय, व्यक्ति शैली एवं जीवन के विभिन्न आयामों में दलित विद्या प्रगति के रास्ते पर आगे बढ़ रही है। दलित साहित्य के कलम के सिपाही ने पैनी दृष्टि से असंगति तक पहुँच कर प्रस्तुत विद्या का विकास हुआ। फिर आज की विभिन्न दलित-अदलित संघर्ष के विभिन्न घटनाएँ, प्रसंगों का विद्या के माध्यम से सफलतापूर्वक उद्‌घाटन किया। आज जीवन के नैतिक मूल्यों का कथन हो रहा है। इन मूल्यों को अर्जितावस्था में लाने का यत्न दलित साहित्य का कारवाँ में शारीरिक होने वाले विपुल हस्ताक्षर है, जिन्होंने दलित साहित्य विद्या के माध्यम में योगदान दिया है।

❑

पंचम अध्याय

हिन्दी कथा–साहित्य में दलित चेतना में नारी का स्वरूप

'चेतना सम्पन्न' होने पर सर्वप्रथम नारी ने यही विचार करना प्रारम्भ किया कि समाज में अब तक उसे उसका वास्तविक स्थान नहीं मिल पाने का क्या कारण हैं? इसका उत्तर उसने समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की विसंगतियों में खोजना चाहा। ये विसंगतियाँ 'धर्म एवं आस्था' तथा 'परम्परा एवं मूल्यों' के प्रति समाज के दोहरे मानदण्ड के कारण है जो पुरुष एवं स्त्री के लिए एक समान नहीं है। सभी सम्बन्धों में नारी की स्थिति अधीनस्थ की है। इसलिए उसके मन में समाज के प्रति असन्तोष है। शोषण के प्रति उसकी अभिव्यक्ति मुखर हो उठी है। इस विषयों पर नारी की बदलती अवधारणा का विवेचन किया गया है।

प्रारम्भ से ही नारी का धर्म में बहुत विश्वास रहा है। वह स्वभाव से ही पुरुष की अपेक्षा अगाध–श्रद्धा एवं विश्वास रखती है। नारी धर्म का अवलम्ब पाकर सफलता से अपना जीवन व्यतीत कर देती हैं, क्योंकि धार्मिक भावना का मूलाधार विश्वास है। जो उत्तराधिकार को सुरक्षित रखा है। हमारे धर्म मनीषियों ने नारी की देवी और पराशक्ति के रूप में कल्पना की है।

नारी के रूप में देवियों की पूजा करने के बावजूद भी शताब्दियों तक भारत में स्त्री को न केवल भोग्या माना जाता रहा है। अपितु स्मृति ग्रन्थों में उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से भी देखा गया है। सामान्यतः भारतीय चिन्तकों की यह धारणा रही है कि नारी वैराग्य धारण करने में अनेक कारणों से असमर्थ हैं, इसलिए पूर्वकाल में व्यक्ति जब ईश्वरत्व की प्राप्ति के लिए निकलता था तो नारी को छोड़ जाता था। इसलिए सन्त कवि कबीर ने पुकार-पुकार कर कहा है—"जब जाना तब परिहरि, नारी महाविकार।" कबीर नारी को महाविकार भले कहते रहे, किन्तु नारी साहस और सहिष्णुता की मूर्ति रही है उसके मातृत्व से पलकर ही विश्व के रंगमंच पर पुरुषों की ऐतिहासिक भूमिकाएँ अस्तित्व में आयीं, वैदिक ऋषियों ने तो कहा है—"माता भूमिः पुत्रव्येहं पृथिव्याः।"[1]

शोषण से जुझती नारी और नारी के चित्रण पर डॉ. रेणु गुप्ता लिखती है "सदियों से नारी समाज, पुरुष, धर्म सभी के द्वारा शोषण का शिकार होता है। आज उसकी स्थिति में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं। समाज में भी नारी को देखने वाली दृष्टि परिवर्तित हुई है। धार्मिक विश्वासों और स्त्री की चारित्रिक नैतिकता के प्रति भी दृष्टिकोण में परिवर्तन अवश्य दिखाई देता है। आज पति को परमेश्वर न मानने वाली नारी स्वयं को मानव रूप में परिवर्तित करने के लिए संघर्षरत है। वह सब कुछ नियति मानकर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। फिर भी आज उसका शोषण हो रहा है। धर्म, समाज, व्यक्ति परिवार सभी में वह, आज के परिवर्तित युग में भी शोषित हो रही है। परन्तु परिवर्तित युग में आज नारी उस शोषण को सहज स्वीकारती नहीं। आज की नारी पति, पिता या किसी के जुल्म को नियति मानने में विश्वास नहीं

---

1. नारी चेतना के आयाम — अलका प्रकाश, पृ. 64

करती। वह इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती हैं, जहाँ तक उसकी सामर्थ्य है जब तक वह उसका विरोध कर सकती है, करती है।"[2]

इस प्रकार नारीवादी कथाकारों ने धर्म एवं आस्था तथा परम्परा एवं मूल्यों में समय के साथ परिवर्तन होना आवश्यक माना है। किसी भी सम्बन्ध को वे तब तक ही निभाना चाहती है जब तक वे उसके व्यक्तित्व के निर्माण में बाधा न प्रस्तुत करें। समाज की जड़ व्यवस्था में वे परिवर्तन की आकांक्षी हैं। सामाजिक कुरीतियों का वे पुरजोर विरोध करती हैं। शोषण के प्रति आज नारी विरोध की मुद्रा में है जो उसकी चेतना के विविध आयामों के सक्रिय होने से सम्भव हो सका है।

महिला लेखिका शरदसिंह का 'पिछले पन्ने की औरतें' यह उपन्यास 2005 में प्रकाशित हुआ, जो मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड की बेड़ियाँ जनजाति महिलाओं को केंद्र में रखकर लिखा गया। बेड़ियों का पेशा परम्परा से नाच गाना ही रहा है। सदियों से उपेक्षित, वंचित, उत्पीड़ित एवं आर्थिक बदहाली का जीवन जी रही बेड़ियाँ समाज की उत्पति से लेकर वर्तमान का विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। स्त्री-विमर्श पर आधारित इस उपन्यास में बेड़नियों की जीवनदशाओं एवं उनसे जुड़ी समस्याओं को बेबाक रूप में प्रस्तुत किया है। समाज में इन औरतों की उपस्थिति को तो महसूसा जाता है, किन्तु इनके प्रति संवेदना कभी-कभार ही नजर आती है। अधिकतर लोगों के लिए ये औरतें नाच-गाने वाली बेड़ीन मात्र है, उन्हें हर कोई भोग्या के रूप में भोग सकता है।

(क) वर्तमान में नारी की स्थिति

प्रायः भारतीय जीवन धर्म केन्द्रित रहा है। व्यक्ति के समस्त क्रियाकलापों को संचालित करने में धर्म की केन्द्रीय भूमिका सर्वस्वीकार्य है। धर्म कोई बाह्याडंबर नहीं

---

2. हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी — रेणु गुप्ता

है अपितु मानव-जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली वह व्यापक अभिवृति हैं जो सर्वाधिक मूल्यवान, पवित्र, सर्वज्ञ तथा शक्तिशाली समझे जाने वाले आदर्श और अलौकिक उपास्य विषय के प्रति अखण्ड आस्था एवं पूर्ण प्रतिबद्धता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है जो मनुष्य के दैनिक आचरण तथा प्रार्थना, पूजा-पाठ, जप-तप आदि बाह्य कर्मकाण्ड में अभिव्यक्त होती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 'धर्म' के प्रति बदलते दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हुए कमला सिंघवी कहती हैं—"आज बदलते युग के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और पारिवारिक मान्यताएँ बदल रही हैं। इसलिए यदि धार्मिक मान्यताएँ इसका अपवाद न हो सकें तो कोई आश्चर्य नहीं। आज का युग अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है और इस युग के साथ कल और आज की धार्मिक मान्यताओं को समझौता करना ही पड़ता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आज की नयी पीढ़ी की धार्मिक आचारों, व्रत-उपवास में कोई श्रद्धा या निष्ठा नहीं रही, या कि उनका मानसिक धरातल आध्यात्मिक पहलू को बिल्कुल स्वीकार नहीं करना चाहता, या कि ईश्वर की भक्ति में उनका विश्वास नहीं रह गया है।"[3]

आज के नारीवाद कथाकार यह प्रश्न उठाते हैं—किसकी व्यवस्था? किसकी संस्कृति? कौन सा धर्म? संस्कृति पुरुष प्रधान संस्कृति है और हिन्दू धर्म ने सदियों से स्त्री को हीनतर स्थित में रखा है। आधुनिक नारी इस प्रथा का विरोध करती है कि धार्मिक दृष्टि से नारी का रूप अत्यन्त पवित्र होते हुए भी समाज ने धर्म का आश्रय लेकर उसके असत रूप को प्रोत्साहित किया। दक्षिण भारत में धर्म की प्रधानता दिखाते हुए उसके नारीत्व को कलंकित किया गया है। धर्म के आश्रय में नारी के

---

3. नारी अंतर्पण और समाज का सन्दर्भ — कमला सिंघवी, पृ. 26

यौवन को देवमूर्ति के सामने प्रस्तुत किया जाता था। देवता का प्रतिनिधि राजा अथवा पुजारी भी उसका उपभोग करता था। इस प्रकार धार्मिक दृष्टि से नारी को भ्रष्ट किया जाता था और धर्म की ओट में व्यभिचार को प्रोत्साहन दिया जाता था। लेखिकाओं के अनुसार न तो परम्परा के प्रति अनावश्यक मोह की जंजीरों में जकड़े रहना शोभा देता है और न नवीन के आकर्षक में पुराने की निन्दा ही अभीष्ट है। अशिक्षित और अल्पशिक्षित वर्ग ने धर्म की कुरीतियों को आश्रय दिया था, किन्तु नगरों व महानगरों में हो रहे परिवर्तनों ने अन्धविश्वास व रूढ़ियों को निराश्रित कर दिया। बढ़ते वैज्ञानिक युग में पुरातन परम्परागत धर्म विलुप्त होता जा रहा है। आज धर्म में वह शक्ति नहीं रही जो मानव जीवन को संगठित रूप प्रदान करें। धार्मिक अनुष्ठान, पूजा पाठ या तन्त्र-मन्त्र को आज की नारी ढकोसला कह कर दूर होती जा रही है। धर्म आज मानव को संचालित करने में असमर्थ है।

महादेवी वर्मा कहती है कि "धर्म का शासन हमारे जीवन पर वैसा ही प्रयासहीन होना चाहिए जैसी हमारी इच्छाशक्ति का आचरण पर होता है। सप्रयास धर्म जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। न वह जीवन की गहराई तक पहुँच सकता है और न उसकी प्रत्येक शिरा में व्याप्त होकर उसे रसमय ही कर सकता है।"[4]

धर्म के मठाधीशों के सामने नारी अपनी अस्मिता की पहचान के लिए प्रश्न पूछता रहती हैं। इस उत्तरआधुनिक काल में उसकी बैचेनी को देख कर प्रभा खेतान पूछती हैं। "कौन लोग हैं जो हमें श्लोक सुना-सुना कर बता रहे हैं कि हम अविश्वसनीय, अबला, पुरुष निर्भर और संकल्पहीन हैं? शा द्वारा प्रतिपादित स्त्री की पहचान और पुरुष से उसकी भिन्नता दोनों ही में मुझे भयानक षड्यंत्र दिखाई देते हैं।"[5]

---

4. मेरे प्रिय निबंध — महादेवी वर्मा, पृ. 117-118
5. स्त्री विमर्श के अन्तर्विरोध — प्रभा खेतान, नारी चेतना के आयाम, अलका प्रकाश, पृ. 68

आज नारी में इतना साहस आ गया है कि वह जोर–जोर से आवाज बुलंद कर सकती हैं कि नारी के अपमान में धर्म नहीं हो सकता है। धर्म सबकों मुक्त करता है, बाँधता नहीं है। नारीवादी ज्ञान की अवधारणा बौद्धिक धरातल पर सारे कूडा–कर्कट को बाहर फेंकने की समझ देती है। बुद्धिजीवियों का मानना है कि हिदू धर्म संस्कृति में नारीवादी आलोचनात्मक अवधारणा अब भी अपनी वैचारिक पहचान हासिल नहीं कर पायी हैं महिलाओं को उन पारम्परिक वैसाखियों का सहारा लेना छोड़ देना चाहिए, जिनके खोखलेपन से सभी परीचित हैं। आज लेखिकाएँ सभी धार्मिक महापुरुषों शा के प्रश्न चिह्न लगा रही है।

स्वान्त्र्योत्तर कहानियों में माता–पिता एवं सन्तान के सम्बन्धों की त्रासदी को चित्रित किया गया है। बदलते परिवेश में सन्तान माँ–बाप उनको नारकीय जीवन–यापन करने के लिए छोड़ देते हैं तो वे उन्हें ऐसे जीवन से मुक्ति भी दिलायें। माँ–बाप ऐसे बेबस सन्तानों पर अपना बोझ डाल उन्हें और परेशान न करें।

अन्य सभी सम्बन्धों की अपेक्षा नारी माँ के रूप के प्रति विद्रोह नहीं करती। स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में भी नारी की महत्तम उपलब्धि मातृत्व को बताया गया है चाहे अब ममता का परम्परागत रूप नहीं रहा फिर भी नारी अपने मातृत्व भाव को दबा नहीं पायी है। आधुनिक नारी के ऊपर युग सन्दर्भों का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

आधुनिक नारी अपने कैरियर के लिए बच्चों को छोड़ भी सकती हैं और अकेले भी जीवन यापन कर सकती है। निरुपमा सेवती की 'खामोशी को पीते हुए' में एक तलाकशुदा नारी बच्चे को लेने जाती हैं, परन्तु द्वारा स्वयं को पहचाने न जाने पर उसे वापस अपने साथ नहीं लाती और आजीवन अकेले रहने का निर्णय लेती हैं। निरुपया सेवती की ही 'फिर कभी' की माँ आधुनिका है जो बेटी के पालन–पोषण की

परवाह न कर पार्टी में शान-शौकत दिखाना पसन्द करती है। धीरे-धीरे उसका हृदय ऐसा करने की गवाही नहीं देता और वह पार्टी इत्यादि को महफिल छोड़कर बेटी को संभालने लगती है।

स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में भाई-बहिन के सम्बन्धों का भी चित्रण किया गया है। इन कहानियों में बहन के रूप में ऐसी नारी का चित्रण किया गया है जो भाई के लिए अपनी सारी खुशियों की बलि देने से भी नहीं हिचकती। वहीं ऐसी नारी का भी चित्रण है जो स्वार्थी बन भाई से बदला लेने से भी नहीं हिचकती।

"सास-वधू के सम्बन्धों से पहले सास को सम्मान देना आवश्यक था, चाहे किसी डर की वजह से मगर आज प्यार करने वाली सारी सास को भी बहू सह नहीं सकती है। ऐसे ही पहले सास भी अपनी वधू को अपने कुल की चलाने वाली मान कर उसे घर में सम्मान देती थी परन्तु आज बहू को अर्थ प्राप्ति का साधन मानकर कपड़े की तरह बदल देने में भी नहीं हिचकिचाती।"[6]

आज ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है जिनका मानना है—"मेरा एक सिद्धान्त है—जुल्म करो, किसी को सताओ, तो कभी उसके लिए पछताओ मत।"[7] इन सब लोगों का कहना है कि आज बस वही ईमानदार है जिसे बेईमानी का मौका नहीं मिला है—"अगर आप कोई गलत काम नहीं कर सके तो कुढ़ते रहे, मन ही मन अफसोस करते रहे कि हाय, मैं बेईमानी नहीं कर सका, मुझसे कमीनगी भी न हो सकी और फिर आप बासी आदर्शों की आड़ में अपने को सहलाते रहे सांत्वना देते रहे।"[8]

---

6. हिन्दी कथा : लेखिकाओं की कहानियों में नारी — रेणु गुप्ता, नारी चेतना के आयाम — अलका प्रकाश, पृ. 88
7. हूँडार — दूधनाथ सिंह, नारी चेतना के आयाम — अलका प्रकाश, पृ. 90
8. हुँडार — दूधनाथ सिंह, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-सितम्बर, 1990, पृ. 48

"जमाना ऐसा आ गया है जबकि बुलबुल भी यही चाहती है कि उल्लू क्यों नहीं हुई।"[9]

वर्तमान में नारी की स्थिति में काफी सुधार आ गया है। आज की नारी स्वतन्त्र जीना चाहती हैं, वह किसी पर निर्भर रहकर जीना नहीं चाहती हैं, वह स्वयं अपने हिसाब से कार्य करती है और अपनी हर जिम्मेदारी पूरी तरह से निभाती हैं। वह किसी दबाव में डर से नहीं रहना चाहती। तो आज दलित नारी भी वह अधिकार समझ रही है कि स्त्रियों के भी अपने अधिकार हैं। वह अपने अधिकार पाने के लिए संघर्ष करती है। और अपने अधिकार पा लेती है। वह हर परेशानी का सामना करती है और सफल भी होती है।

आज के परिवेश में नारी भी सामाजिक चेतना से पूर्ण हो रही है। अपनी सामाजिक भूमिका में पुरुषों की बराबरी का अधिकार माँग रही है और इस दिशा में वह संघर्षशील भी है।

सामाजिक कुरीतियों का सबसे ज्यादा शिकार नारी वर्ग हो रहा है। उसमें समाजवादी चेतना आ गयी है, परन्तु सदियों से चली आ रही निरक्षरता के कारण वह इस दिशा में कम ही प्रयत्नशील हो पायी है। कहानियों के लिए समाज द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य व्यवस्था के छद्म को गहराई से महसूस कराती है। अधिकांश कहानियाँ नारी के पक्ष में ये दर्शाती हैं कि सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में 'नैतिक-अनैतिक' के प्रश्न नारी को बार-बार अग्नि-परीक्षा के लिए खड़ा करते रहे हैं। ये कहानियाँ रूढ़ परम्पराओं, तत्वों और यथास्थिति वादियों को बेनकाब करती है।

---

9. एक साहित्य की डायरी — मुक्तिबोध पृ. 69

स्त्री के पुरुष मित्रों को आज भी समाज सहज रूप में स्वीकार नहीं करता। वस्तुतः आज के पुरुष की सारी उदारता एवं आधुनिकता अधिकांशतः वैचारिक धरातल तक ही सीमित है। आज उच्च शिक्षा तथा स्वावलम्बन के बावजूद एक मध्यवर्गीय परिवार की स्त्री के सामाजिक तथा नैतिक मूल्य वहीं हैं, जो वर्षों से चले आ रहे हैं। जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में आज भी कोई बदलाव नहीं आया है। आज भी शहरों, कस्बों, महानगरों तक की असंख्य युवतियाँ विवाह को अपने जीवन की एकमात्र नियति मान कर जाने-अनजाने इसी की प्रतिक्षा करती रहती हैं। अधिकांश शिक्षित स्त्रियों का जीवन आम घरेलू स्त्रियों की भांति पति और बच्चों के सीमित दायरे में सिमट कर रह जाता है। ममता कालिया ने एक स्थान पर लिखा है—"मेरे जीवन में कभी कुछ नहीं घटा, सिवाय दो बच्चों, दो गर्भपात के।"

समाज के प्रति नारी-विद्रोह का एक कारण यह भी है कि शताब्दी के अन्त में नारी काफी जागरूक हो गई है और अपने व्यक्तित्व को आँकने लगी है—मणिका मोहनी की कहानी की पत्नी महसूस करती है कि उसका पति उसे समानता का दर्जा नहीं देता—"वह मुझसे इतनी अधिक प्रतिज्ञाएँ करवाता है कि मैं यह महसूस करने लगती हूँ कि कमाये हुए पैसे के लिए उसका निहायत आभारी होना चाहिए। पति-पत्नी दोनों ही अपना फर्ज अदा करते हैं, उसमें आभार की क्या बात? और क्यूँ कोई भी दो व्यक्ति साथ रहते हुए अनकहे एक-दूसरे के प्रति आभारी होते हैं किन्तु उसमें न जाने यह कैसी सम्मान की लालसा है, पूजित होने का भाव है, जो वह इसके लिए मुझे सचेत करना फर्ज समझता है।"[10]

---

10. हिन्दी कथा-लेखिकाओं की कहानियों में नारी, पृ. 249

आज शोषण अधिक होने पर पत्नी पति को छोड़कर स्वतन्त्र जीवन जीना स्वीकार करती है चाहे उसके लिए समाज में उसे कितनी ही यातनाओं को सहना पड़े। उसने समस्याओं से मुकाबला करना सीख लिया है। समस्या से घबराकर पनाह ढूँढ़ना उसे स्वीकार नहीं। निरुपमा सेवती की 'सूर पंचशती' की अर्चना पति के रोज-रोज के तानों से परेशान होकर पति को त्याग कर स्वतन्त्र जीवन जीती हैं—"मैं नहीं सह सकती व्यक्ति पर व्यक्ति का ऐसा शोषणात्मक अधिकार अपने विचार दूसरों पर थोपने का यह ढंग चाहे किसी सचित्र व्यवस्था से ढाँप लो, लेकिन है तो भयंकर नीचता।"[11]

(ख) दलित चेतना में नारी की स्थिति

"मानवता के प्रबल शत्रुओं शोषण करने वाले।
जाग उठी है शोषित-नारी अब तो अपनी चाल संभालो।"[12]

स्त्री और पुरुष एक ही रथ के दो पहिये माने जाते हैं। दोनों एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित है फिर पुरुष वर्ग स्त्री को सेकेण्ड सेक्स क्यों मानता है। ये स्थिति केवल भारत में ही नहीं लगभग सम्पूर्ण विश्व की है इसलिए फ्रेन्च लेखिका सीमोन दबाउवार 'द सेकेण्ड सेक्स' जैसे कृति लिखती हैं। हमारे देश में स्त्री आज भी पराधीन है, पुरुष के अधीन है। पिता, पति और पुत्र के द्वारा थोपी गई व्यवस्थाओं के अधीन है। शोषण, कुपोषण, उपेक्षा और अपमान का जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

वृहत हिन्दी कोश-कालिका प्रसाद के अनुसार—दलित शब्द का अर्थ रौंदा, कुचला, दबाया हुआ और पदाक्रांत है।[13]

---

11. सूर पंचशती — निरूपमा सेवती, भीड़ में गुम, पृ. 99
12. रमेश चन्द्र चतुर्वेदी — बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, प्रकाशन - साहित्य संस्थान गाजियाबाद, पृ. 178
13. कालिका प्रसाद — वृहद हिन्दी कोश, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, विक्रम भवन लंका, वाराणासी, पृ. 10

स्वतन्त्र भारत की महिलाओं में आज नवचेतना और नव जागृति आई है। वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होती जा रही है।

"आज महिला कदम से कदम मिलाकर चलने की स्थिति में है फिर भी उन्हें प्रोत्साहन देने की जरूरत महसूस हो रही है। क्योंकि जो व्यक्ति दलित समाज में पैदा हुआ है उसी ने पीड़ा, दु:ख और यातनाओं को नजदीक से देखा है और उसी के अनुरूप इलाज किया है। ठीक इसके विपरीत जो व्यक्ति सवर्ण वर्ग में पैदा हुआ, उसने सिर्फ बाहरी आवरण यानी त्वचा का इलाज किया है क्योंकि उसे अन्दर के घाव का ज्ञान ही नहीं था।"[14]

हिन्दी दलित साहित्य आन्दोलन के समर्थ रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार—"दलित शब्द दबाये गये, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य में जुडता है तो विरोध और नकार की ओर संकेत करता है। वह नकार या विरोध चाहे व्यवस्था का हो, सामाजिक विसंगतियों या धार्मिक रूढ़ियों आर्थिक विषमताओं का हो या भाषा, प्रांत के अलगाव का हो या साहित्यिक परम्पराओं, मानदंडों या सौन्दर्य शा का हो, दलित साहित्य नकार का साहित्य है। जो संघर्षों से उपजा है, जिसमें समता, स्वतन्त्रता और बन्धुता का अभाव है, वर्ण-व्यवस्था से उपज जाति भेद का विरोध है, दलित की व्यवस्था दु:ख, पीड़ा, शोषण का विवरण देना या बखान करना ही दलित चेतना नहीं है या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रु विगलित वर्णन जो मौलिक चेतना से विहीन हो। चेतना का सीधा सम्बन्ध दृष्टि से होता है, जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के

---

14. संपादक — डॉ. हरिमोहन धावन — पूर्वा देवा, म. प्र. दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, पृ. 29

तिलिस्म को तोड़ता है, वह है दलित-चेतना। यह दलित मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया है।"[15]

दलित साहित्य दलितों में चेतना लाने, अपने अधिकारों के लिए संग्राम करने तथा छीन लिये गये अधिकारों को वापस लेने की प्रेरणा देता है।

दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है, जो सभी तरह की वर्ण-व्यवस्था, जाति-पांत, ऊँच-नीच भेदभाव के दायरे से ऊपर है, जिसे धर्म भाषा और प्रदेश की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है।[16]

डॉ. माताप्रसाद के अनुसार—दलित साहित्य कठोर अनुभवों पर आधारित साहित्य है। दलित साहित्य में आक्रोश या विद्रोह साहित्य है। ऐसा मानना पूरी तरह सच नहीं हैं, दलित साहित्य में जहाँ सामाजिक दर्द है, जातिवाद की पीड़ा का शोषण तथा उत्पीड़न की कसक है, वहीं जाति उत्पीड़न तथा शोषण के कारण की तलाश भी है। इसमें भाग्यवाद को अस्वीकार करने की भावना भी है। दलित साहित्य छन्द विधान को तोड़ता है और जनभाषा का हिमायती है।[17]

डॉ. अम्बेडकर का मूल मंत्र था शिक्षित बनो, संगठित होओ, संघर्ष करो तथा अतः दीपोः भवः। आपका मत था कि सामाजिक क्रान्ति एवं परिवर्तन में नारी वर्ग को भी पुरुष वर्ग का सहयोगी बनाना होगा। आपने बम्बई की एक महिला सभा को सम्बोधित करते हुए कहा—"नारी राष्ट्र की निर्मात्री है, हर नागरिक उसकी गोद में पलकर बड़ा होता है, नारी को जागृत किये बिना राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं है।" उन्होंने नारी को शिक्षित करने और राष्ट्रीय उन्नति में भागीदार बनाने का आह्वान

---

15. संकलन-मंजु सुमन संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी एक विमर्श, पृ. 84
16. माताप्रसाद — हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, पृ. 154
17. संपादक, सुश्री डॉ. तारा परमार, आश्वस्त, नवम्बर 2006, अंक 39, पृ. 5

किया। आपके अनुसार शिक्षा शेरनी का दूध है, शिक्षा के बिना जीवन व्यर्थ है। कुछ सोचने-समझने एवं चिन्तन करने की शक्ति शिक्षा से ही सम्भव है।"[18]

1927 ई. के ऐतिहासिक सम्मेलन में हजारों महिलाओं के साथ महिलाओं को नारकीय जीवन में धकेलने वाली मनुस्मृतियों को जलाकर महिलाओं में क्रान्ति का बिगुल बजाया।"[19]

1930 ई. को कालाराम मन्दिर में प्रवेश के आन्दोलन में हजारों महिलाओं ने डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के साथ सत्यागृह में भाग लिया।"[20]

16 जून, 1936 को बम्बई के दामोदर हाल में महिलाओं को सम्बोधित करके डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने कहा—"नारी समाज का गहना है, सभी को उसे सम्मान देना चाहिए।"

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने नारियों में आत्म-सम्मान, आप साहसी बनो, स्वाभिमान से रहने। आपके पेट से जन्म लेना कोई अपराध नहीं है। ब्राह्मणी के पेट से जन्म लेना कोई पुण्य नहीं, गरीबी से अपने स्वाभिमान को बलि मत चढ़ाओं। स्वाभिमान के बिना जीना पशुओं के तुल्य जीना है। आप भी इंसान की तरह जीओ, स्वाभिमान के साथ सिर ऊँचा करके जीओ।"[21]

सदियों से स्त्रियों के पांवों में दासता की जो बेड़ियाँ पड़ी थीं, खुल गईं और स्त्री स्वाभिमान से अपने पैरों से चलकर अपनी राह बनाने पर तत्पर हुई और आज स्कूल, कॉलेज, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों की

---

18. संपादक : डॉ. हरिमोहन धावन, पूर्वा देवा, पृ. 29
19. संपादक : डॉ. हरिमोहन धावन, पूर्वा देवा, पृ. 30
20. संपादक : डॉ. हरिमोहन धावन, पूर्वा देवा, पृ. 30
21. संपादक : डॉ. हरिमोहन धावन, पूर्वा देवा, पृ. 31-29

गतिविधियों में तथा समाचार पत्रों के प्रकाशन व लेखन कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग ले रही है।

दलित उपन्यासों में नारी चेतना—उदाहरणार्थ परदेशी के उपन्यास 'जय कलिंग' में दलित नारी राजो के माध्यम से वाणी दी है। राजो मनुष्यों में किसी तरह के भेदभाव को नहीं मानती। वह अपनी सखी से कहती हैं—

"चमार है तो क्या हुआ! चमार क्या मनुष्य नहीं होते? जिस तरह राजाओं-सामंतों और श्रेष्ठियों का जन्म होता है। उनमें जवानी और बुढ़ापा आता है, उसी तरह शोषितों, समाज के सच्चे सेवकों, दासों और शूद्रों का भी जन्म होता है। उनके जीवन में भी यौवन के बसंत मुस्कारते हैं, प्रौढ़ावस्था का अनुभव जीवन पथ के कुटिल कंटकों से सावधान करता है और वृद्धि होने पर जरा-जन्म, रोग-शोक और संताप सताते हैं अथवा संचित विवेक काल के कष्ट को जन्मांतर के अमोद में बदल देता है।"[22]

दलित उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द के गोदान में नारी जाग उठी है। गोदान में कर्त्तव्यशील किसान अधिकार माँगते हैं, कर्त्तव्यशील नारी प्रेम माँगती, कर्त्तव्यशील आत्मा सबका सुख माँगती है। मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' में दलितों के जीवन का चित्रण, दलितों के जीवन-दर्शन होते हैं। गोदान में दलित चेतना उस समय उग्र रूप धारण कर लेती है, जब सिलिया के माँ-बाप और कुछ चमार सिलिया के साथ हो रहे दुर्व्यवहार और अन्याय का प्रतिकार करने के लिए ग्वालियान में पहुँच जाते हैं, जहाँ सिलिया पारिश्रमिक के बिना दातादीन की मजदूरी कर रही थी,

---

22. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. 21

सिलिया का बाप हरखू दातादीन को चुनौती देते हुए कहता है—"हम आज या तो दातादीन को चमार बनाकर छोडेंगे, या उनका और अपना रकत एक कर देंगे।...तुम्हें हम ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं...हमारी इज्जत लेते हो तो अपना करम हमें दे तो।"[23]

सिलिया की माँ भी रणचंडी बनकर दलित नारी के विद्रोह को वाणी देती हैं—"हम सिलिया को अकेले न ले जायेंगे उसके साथ दातादीन को भी ले जायेंगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी...धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी नहीं पियोगे।"[24]

चुनाव का समय निकट है दारोगा जी गाँव की तलाशी के बहाने अपनी पूजा करवाना चाहते थे। पर होरी मर्यादा का कायल होने के कारण हीरा के घर की तलाशी में अपना अपमान समझकर मुखियाओं के कहने पर बीस रुपये घूस देने जाता है। पर तब तक धनिया ने दुर्गा का रूप धारण कर लिया था—होरी घूस न दे सका। उसी समय धनिया सारी व्यवस्था को लताड़ती है—ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद-ब्याज, डेढी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो गरीबों को लूटो। उस पर सूराज चाहिए। जेल जाने से सुराज न मिलेगा, धरम से, न्याय से।"[25]

"गोदान में भय के कारण गोबर जब झुनिया को छोड़कर चला जाता है तो सामाजिक टकराहट शुरू हो जाती है। जब पण्डित दातादीन झुनिया को घर से निकलने की बात कहता है तो धनिया सामाजिक और मनुष्य के बीच मनुष्य की, विचार और

---

23. गोदान — प्रेमचन्द, हरिश प्रकाशन मन्दिर, पृ. 281
24. गोदान — प्रेमचन्द, हरिश प्रकाशन मन्दिर, पृ. 281
25. गोदान — प्रेमचन्द, हरिश प्रकाशन मन्दिर, पृ. 93

जीवन के बीच जीवन की प्रतिष्ठा करती है। उसने तीव्र स्वर में कहा, हमको कुल-प्रतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज कि उसके पीछे एक जीवन की हत्या कर डालते। ब्याहता न सही पर उसकी बाह तो पकडी है मेरे बेटे ने ही। वहीं काम बड़े-बड़े करते हैं, मुदा उनको कोई नहीं बोलता, उन्हें कलंक ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं, उनकी मरजाद बिगड़ जाती है। नाक कट जाती है। बड़े आदमियों की अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।"

'गोदान' की 'धनिया'—जिसके जीवन का कोना-कोना विद्रोह की ज्वाला से प्रज्वलित होता रहता है। वह सोचती है कि "हमने जमींदार के खेत जोते हैं तो वह अपना लगान ही तो लेगा उसकी खुशामद क्यों करें? उसके तलवे क्यों सहलाते हैं? धनिया की आवाज केवल धनिया की ही नहीं है—समस्त शोषित वर्ग का विद्रोह है। धनिया जब झुनिया को अपने घर में आश्रय देती है तो पंच उस पर दण्ड लगा देते तो वह कहती है—" पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हम तो मिट जायेंगे, कौन जाने इस गाँव में कोई रहे या न रहे, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर से जरूर लगेगा। मुझसे इतना कड़ा जरीबान इसलिये लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों, उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारन नहीं बना दिया। यही न्याय है—ऐं?"[26]

दलित कहानियों में नारी चेतना उदाहरणार्थ ओमप्रकाश की कहानी 'जंगल की रानी' में डिप्टी साहब प्राइमरी स्कूल का मुआयना करने गाँव आये थे, तो वे स्कूल का मुआयना तो कम और स्कूल की शिक्षिका कमली के सौन्दर्य का मुआयना अधिक करने लगे थे...कमली को फंसाने के लिए उन्होंने योजनाबद्ध जाल बुना और

---

26. गोदान — प्रेमचन्द, हरिश प्रकाशन मन्दिर, पृ. 106

उसे ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर हेतु शहर भेजा गया। कमली को देखते ही डिप्टी साहब बेकाबू हो गए थे। भूखे तेंदुए से टूट पड़े कमली पर वह। कमली दरवाजा पीटने लगी। तब तक एस.पी. ने उसे दबोच लिया। कमली के भीतर का जंगल जाग उठा। वह जंगली जानवरों से अपनी सुरक्षा के लिए संघर्ष कर रही थी। कानून के रखवालों और कमली के बीच वासना युद्ध में कमली शक्तिशाली संघर्षपूर्ण व्यक्तित्व की युवती होने के कारण अपनी अस्मिता बचा ली और कानून के रखवाले जंगली जानवरों को लहूलुहान कर दिया।"[27]

डॉ. कुसुम मेघवाल की 'मंगली' और 'अंगारा' की कहानियों की पात्राएँ 'मंगली' और 'जमना' हैं।

मंगली कहानी की नायिका मजदुर है। वह विधवा होने के बाद घडियाली सहानुभूति प्रकट करने वाले ठेकेदार के विश्वास में आकर उसके सर्वेंट क्वार्टर में रहने लगी। वह उसे संरक्षण देने की आड़ में उसका भक्षण करना चाहता था। ठेकेदार मंगली के विरोध दर्ज कराने पर गरजा—"मेरे आश्रय में रहकर मुझे ही आँखें दिखा रही है, चाण्डाल कही की। जिंदगी भर सावित्री ही बनी रहेगी, देखता हूँ कैसे बचती है और कौन बचाता है तुझे।"[28] कहते हुए मंगली की ओर झपटा और अपनी बांहों में जकड़ना चाहा—लेकिन मंगली शेरनी की भांति झपटी-मंगली ने फुर्ती से अपना घूंघट हटा लिया और आव देखा न ताव, अपने चूल्हे के पास पड़ी जलावन की मोटी लकड़ी उठाई और दे मारी ठेकेदार के सिर में। ठेकेदार को मंगली के अन्दर छिपी नारी शक्ति का भान नहीं था। सिर में चोट लगने से वह वहीं बेसुध होकर गिर पड़ा। मंगली

---

27. गोदान — प्रेमचन्द, हरिश प्रकाशन मन्दिर, पृ. 93
28. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. 96

सिस्टम के सड़ेपन से जकड़ती नहीं उसे न्याय मिलता है साथ ही मिलती है दलित समाज को नई शक्ति।

'अंगारा' की पाला 'जमना', 'जमना' को ठाकुर के ज्येष्ठ पुत्र, सुमेर सिंह और उसके चाचा नत्थु सिंह द्वारा दैहिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। जमना का बड़ा भाई उसको सबक सिखाने के लिए उस पर वार करता है। यहाँ सुमेर सिंह जहाँ सवर्णता के अहंकार में डूबा है, तो वहीं दूसरी ओर जाति के स्वाभिमान की रक्षा के लिए हथियार उठाता है। तो कहानीकार के अनुसार "वह उपस्थित भीड़ में से उठकर तेजी से घर में गई और कोने में पड़ी दरांती उठा लाई।

सरकार पुलिस जिसे सजा नहीं दे पाई, उसे जमना ने सजा दे दी। अपना प्रतिशोध पूरा किया। उसने सुमेर सिंह के पुरुषत्व के प्रतीक अंग को ही काट कर शरीर से अलग कर दिया। वह तड़प रहा था। अब उसका बचना सम्भव नहीं था। यदि बच भी जाता, तो उसकी जिंदगी मौत से भी बदत्तर होगी, अब किसी गरीब लड़की की इज्जत से नहीं खेल पायेगा। इसके लिए इतनी सजा काफी थी।"[29]

डॉ. कुसुम वियोगी की कहानी 'अन्तिम बयान' की अतरो की गाँव के प्रधान ठाकुर के बेटे राजेन्द्र द्वारा बलात्कार के इरादे से किये गऐ निंदनीय व्यवहार का जवाब राजेन्द्र के शिश्न को काटकर देती है। राजेन्द्र की हत्या का शक 'गाँव वालों' तथा 'अतरो' पर भी पड़ा। दारोगा ने उसे बयान देते हुए थाने चलने को कहा। गाँव की लड़की होने के कारण गाँववासियों ने आपत्ति की। अतरो बोली–"गाँव वालों और सिपइया तू भी सुन। बयान चाहिए, जरूर दूँगी।"[30]

---

29. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. 99–98
30. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. 99

अतरो घर से एक कागज का बंडल लेकर आई और भीड़ के बीच आकर बोली—"गाँववालों सुनो। दारोगा को बयान चाहिए तो सुनो मेरो बयान!" अतरो कागज के बंडल में से निकालकर राजेन्द्र का कटा हुआ पुरुषत्व लहरा दिया।"[31]

सूरजपाल चौहान की कहानी 'आज की अहिल्या' की नायिका 'अंगूरी' दलित नारी है। पण्डित चन्द्रभान और काले पहलवान की नजर में दलित नारी मात्र भोग्य वस्तु है। पण्डित चन्द्रभान षड्यंत्रपूर्वक उसके पति गेंदा को एक रात के लिए तहसीलदार के पास कस्बा भेज देता है। तत्पश्चात् पण्डित चन्द्रभान ने योजनाबद्ध तरीके से उसके घर रात के अंधेरे में हमला बोल दिया। पण्डित चन्द्रभान को अपने घर में देखकर वह क्रोधित होते हुए बोली—"ठहर हरामी, कमीने पण्डित। दूसरे की बहू-बेटियों पर बुरी नजर रखने वाले, निकल मेरे घर से बाहर।"[32]

कहानी के अन्त में अंगूरी कहती है—"चल निकल यहाँ से, यदि जरा भी देर लगाई तो तेरी अन्तडियाँ निकालकर बाहर कर दूँगी।

पोंगा पण्डित अहिल्या नहीं हूँ, मैं अंगूरी हूँ-अंगूरी।"[33]

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'क्षितिज' की नायिक 'रेवती' बार-बार छली जाती है। ससुराल में जमींदार की हवस का शिकार होती है। जब सास-बहू खेत में घास छील रही थी, "नानक सिंह मानवीय सदाचार और सदस्यता की सीमा लांघकर बेहूदगी और धृष्टता पर उतर आया। उसने रेवती का हाथ पकड़ लिया, वह दहल उठी। रेवती चिल्लाई तो नहीं, लेकिन छुड़ाने के लिए छटपटाने लगी। अब नानक

---

31. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. 99
32. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. 100
33. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. 100

सिंह ने उसे अपनी बांहों के आगोश में समेट लिया था। इस समय निरीह और असहाय रेवती की दशा छिपकली के मुँह में फँसी तितली जैसी हो गई थी।

किन्तु जब रेवती ने अपनी इज्जत पर प्रहार देखा तो बचाव हेतु नानक सिंह की नाक पर खुरपी का वार कर दिया। उसकी नाक कट कर लटक गई। घायल नानक सिंह भागा। यहाँ रेवती ने साहसपूर्वक अपनी अस्मिता बचा ली।"[34]

"एक पुरुष की अपेक्षा हम स्त्रियाँ तात्कालिक रूप से यह समझ सकती हैं कि औरत होने के क्या अर्थ हैं और हमें किन सुविधाओं और असुविधाओं में जकड़ा गया है।"[35]

दलित कविता में नारी चेतना : उदाहणार्थ—सीमोन द बोउआ सी.बी. भारती का मानना है कि आज युग बदल चुका है। अब स्त्री पराधीन नहीं रहेगी वह विद्रोह कर देगी उन व्यवस्थाओं के खिलाफ जो उसे पराधीनता की जंजीरों में जकड़ती है।

"अब कोई द्रोपदी जन्म नहीं लेगी।
कर देगी वह विद्रोह निर्ममताओं के विरुद्ध।"[36]

अपने अस्तित्व की पहचान आज की स्त्री को हो गई और वह स्वयं ही अपने सारे बंधन तोड़ देना चाहती है–

मैं बन्ध्या नहीं हूँ
न ही पत्नी हूँ
नपुसंक काल की

---

34. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. 101
35. संकलन : मंजू सुमन, संपादन, ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी, एक विमर्श, पृ. भूमिका
36. रमेशचन्द्र चतुर्वेदी, बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, पृ. 181

मैं सृजनशीला
परम्परा हूँ अपनी माँ की।"[37]

समाज में स्त्री को उपेक्षित और पराधीन बनाए रखने वाली चीजों को नकार कर विद्रोह के स्वर को अपनाकर आज की स्त्री कहती हैं—

पिंजरे में बंद मैना को
किस्सा गोई पाठ पढ़ाते रहे
लाज-शर्म का हिसाब लगाते रहे
तालाबंद का हक जताते हैं।
आज यह खुद्दार औरत
अपने आपको पहचान गई है
इसे यूं न सताओं
वरना यह भी
नंगेपन पर उतर आएगी।
तुम्हारे सर्वस्व को नकारकर
तुम्हें नीचा दिखाएगी।"[38]

प्रो. कुमुद पावडे सुशीला जी की पुस्तक 'तुमने उसे कब पहचाना' में लिखती हैं—समता, स्वतन्त्रता, न्याय हमारे मूलभूत मानवीय अधिकार हैं। सुशीला जी मानती हैं कि समाज की गलत धारणाओं को हम बदलेंगे। अपने अधिकारों को हासिल करेंगे।

---

37. रमेशचन्द्र चतुर्वेदी — बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, पृ. 182
38. रमेशचन्द्र चतुर्वेदी — बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, पृ. 183

"जागरूक नारी बदलेगी।
सदियों की परिपाटी
पाएगी समता अधिकार
वह नहीं किसी से कम होती।"[39]

दलित कविता समाज में स्त्री को समता और न्याय दिलवाने में सतत संघर्षरत है। महिलाओं की पराधीनता को समाप्त करने के लिए वह दृढ संकल्प हैं।

सुशीला जी की विद्रोहिणी कविता में परिवर्तन का स्वर है। आज की स्त्री को छत का खुला आसमान नहीं आसमान की खुली छत चाहिए –

"माँ–बाप ने पैदा किया था गूंगा।
परिवेश ने लंगड़ा बना दिया...
मुझे उन्नत असीम दिगंत चाहिए
छत का खुला आसमान नहीं
आसमान की खुली छत चाहिए।
मुझे अनंत आसमान चाहिए।"[40]

डॉ. सोहनपाल सुमानाक्षर द्वारा लिखी गई वह पंक्तियाँ दलित शोषित समाज की अबलाओं और नारियों में चेतना जागृत करती है। स्वयं प्रतिशोध की अग्नि में जलकर उच्चवर्ग और धर्म के ठेकेदारों के अत्याचारों का वीर बाला बनकर स्वयं प्रतिशोध लिया और दलित–शोषित नारियों में चेतना जागृत की। उदाहरणार्थ—

---

39. रमेशचन्द्र चतुर्वेदी — बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, पृ. 185
40. रमेशचन्द्र चतुर्वेदी — बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता–प्रकाशन साहित्य संस्थान लोनी गा. बा, पृ. 196

"फूलन हमारा आदर्श है
उसने दलित शोषित समाज को
अबला नारियों के सुहाग को एक आदर्श
दिया है स्वयं की प्रतिशोध की अग्नि में जलकर
वीरता का मार्ग प्रशस्त किया है।
उसका गंभीर चेहरा और मूक वाणी कहती है
उच्च वर्ग और धर्म के ठेकेदारों के अत्याचारों की कहानी
उसने वीर बाला बनकर स्वयं प्रतिशोध लिया है
सदियों से दलित, शोषित के लिए
एक नया मार्ग खोल दिया है।"[41]

आज की भारतीय दलित नारी खासकर ग्रामीण महिलाओं की दशा शोचनीय है और विकास एवं परिवर्तन सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रभाव स्त्रियों की स्थिति में भूमिकाओं पर बहुत कम पड़ा है।

डॉ. सुशीला टाक भौरे समाज में नारी की स्थिति का यथार्थ चित्रण करती हैं। वह सोचती हैं—

"लिखते समय कलम को झुका लें
बोलते समय बात को संभाल लें
और समझने के लिए सबके दृष्टिकोण से देखें
क्योंकि वह एक स्त्री है।"[42]

---

41. संपादक : माताप्रसाद — हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृ. 300-301
42. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी एक विमर्श, पृ. 92

उदास बुद्धिजीवियों को सम्बोधित करते हुए सुशीला जी कहती हैं—

"तुम सूरज न उगा सके। कोई बात नहीं
आशा का एक दीप जला दो
जनमानस में। अपनी कलम से
उद्‌बोधन से। चेतना को जगा दो।"[43]

दलित साहित्य में नारी चेतना के प्रमुख उदाहरण हैं, स्वतन्त्रता सेनानी महावीरों देवी वीरांगना झलकारी बाई, वीरांगना ऊदा देवी, जगरानी वासी, अवंती बाई, संत लल्ला योगिन—धार्मिक मतभेदों को दूर करने के लिए भक्ति के गीत गा गाकर प्रचार किया करती थी।

सावित्री बाई फूले प्रथम महिला अध्यापिका ने अपने पति महात्मा फूले के साथ मिलकर शैक्षणिक कारवाँ बढ़ाया आदि नारी चेतना के प्रेरणा त है।

"यह जीवन-यज्ञ पुरुष का
रह जाता निपट अधूरा
नारी हविष से अपनी
करती न यदि उसे पूरा।"[44]

अन्त में, मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि नारी चेतना का जीता जागता सबसे महत्त्वपूर्ण ज्वलंत उदाहरण है—उत्तर प्रदेश की एडवोकेट माननीय मुख्यमंत्री सुश्री मायावती। मुख्यमंत्री जी का कथन—"जब तक केन्द्र में बहुजनों की सरकार नहीं बनती तब तक दलितों-शोषितों पर होने वाले अत्याचार समाप्त नहीं होंगे।"

---

43. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी एक विमर्श, पृ. 93
44. संकलन : मंजू सुमन, संपादन : ज्ञानेन्द्र रावत — दलित नारी एक विमर्श, पृ. 92

"मानवतावादी 'बहुजन मूवमेंट' हमारे लिए सर्वोपरि है। हाँ उसकी राह में रुकावट बनने वाले को मैं अपना निशाना बनाने में कतई नहीं चूक सकती हूँ।"[45]

आयरन लेडी—"ऐ! बहुजन समाज के लोग जागो! उठो! डरो मत! दबो मत! घबराओ मत! हजारों साल की गुलामी का अन्त करने और अपना उद्धार स्वयं करने के लिए संसद रूपी सत्ता के मन्दिर पर वोट के माध्यम से कब्जा कर लो। मेरा प्रयास है कि कुछ ही महीनों के अन्दर जल्द ही भारत के सर्वजन समाज की इच्छानुसार प्रधानमंत्री देकर यहाँ "सामाजिक परिवर्तन" का सूत्रपात करूँ।"[46] कु. मायावती।

(ग) दलित चेतना में दलित नारी की स्थिति

पुरुषों की समाज व्यवस्था जिसमें निर्णय लेने के सारे अधिकार द्विज पुरुषों के पास होते हैं, नारी मात्र की स्थिति कोई बेहतर नहीं है। फिर दलित नारी का तो कहना ही क्या? भारतीय समाज के इतिहास में नारी पूज्या रही है और पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व की धनी भी। आधुनिक युग में भी नारी ने शिक्षा, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, राजनीति इत्यादि तमाम बौद्धिक और तकनीकी क्षेत्रों में अपनी योग्यता तथा क्षमता का सफल परिचय दिया है, किन्तु सम्पूर्ण विकास क्रम में पुरुष की तुलना में वह अभी भी पिछडी हुई है। उसके लिए राजनीति में 33 फीसदी आरक्षण की माँग उठना यह सिद्ध करता है कि राजनीति व अन्य क्षेत्रों में नारी की सहभागिता अभी बहुत कम है। दूसरा ध्यान देनेवाला सवाल यह है कि उपर्युक्त क्षेत्रों में कितनी स्त्रियों ने दखल किया है परन्तु शासन-प्रशासन, शिक्षा, साहित्य, कला, पत्रकारिता, संगीत और सिनेमा आदि क्षेत्रों में प्रमुखता से अपनी उपस्थिति दर्ज करने वाली महिलाएँ क्या केवल गैर-दलित

---

45. संपादक : भगत सिंह राका, बहुजन न्यूज साप्ताहिक पत्र, प्रकाशन, गोपालपुरा, आगरा, पृ. 2
46. प्रधान संपादक : डॉ. राजीव रत्न, अम्बेडकर टूडे, शीतला चौकिया, जौनपुर, पृ. बाह्य जिल्द।

वर्ग की ही स्त्रियाँ नहीं है? दलित स्त्री इन क्षेत्रों में अपवाद स्वरूप ही मिलती हैं। सरकार तथा गैर-सरकारी सेवाओं में उसकी भागीदारी नगण्य है। फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द बोउवार कहती हैं, दरअसल स्त्रियों के साथ सबसे बड़ी त्रासदी उनका स्त्री होना है। नई सामाजिक व्यवस्था में उनका अस्तित्व एक ऐसी स्त्री के रूप में प्रचलित हुआ है कि उन्हें अपने आपको अन्यनिष्ठ और 'वस्तुनिष्ठ' मान लेने के लिए बाध्य होना पड़ा।"[47]

सीमोन द बोउवार के मत से थोड़ा हटकर यदि भारतीय परिवेश में देखे तो दलित स्त्री मात्र स्त्री होने की त्रासदी नहीं सहती, बल्कि दलित जाति से होने के कारण वह लिंगभेद और जातिभेद सहते हुए दोहरे-तिहरे आक्रमण झेलती है। एक पुरुष-प्रधान समाज होने के कारण वह अपने ही समाज के पुरुषों की दृष्टि में भी दूसरे दर्जे की प्राणी पात्र हैं, जो उनके अनुसार कम बुद्धि की है। इसको आधार बनाकर तमाम उलाहने, अवहेलनाएँ, तिरस्कार उसे झेलने पड़े हैं। इस कारण उसे अपनों से ही उपेक्षा तथा प्रताड़ना मिलती है। दूसरी ओर गैर-दलित समाज उसे दो तरह से कमजोर पाता है, एक तो वह स्त्री है, दूसरे वह दलित जाति से होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अछूत पुरुषों की जैसी सामाजिक दशा है, उनके समाज की स्त्रियों की स्थिति में विशेष फर्क नहीं है। दलित स्त्री की दशा व्यवहारतया इस समाचार की सहायता से समझी जा सकती है। उदाहरण हैं-"दौसा जिले के सिकराय तहसील के ठीकरिया गाँव के सरकारी स्कूल में स्वतन्त्रता दिवस समारोह के अवसर पर कार्यवाहक महिला सरपंच मिश्री देवी को निर्व कर उसके साथ मारपीट करने वाले चार लोगों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है। इन पर आरोप था कि महिला सरपंच के दलित (हरिजन) होने के कारण वह उसके द्वारा ध्वजा-रोहण के खिलाफ थे।"[48]

---

47. सीमोन द बोउवार — स्त्री उपेक्षिता, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लि. , दिल्ली, 1994, पृ. 32.
48. ध्वजारोहण कर रही हरिजन महिला सरपंच को निर्वस्त्र कर मारा पीटा, राष्ट्रीय सहारा, 1998 .8 .19

दलित स्त्री को भारतीय संविधान में समान अधिकार प्राप्त होने के बावजूद व्यावहारिक स्थिति सामन्ती युग की व्यवस्था का अमल दर्शाती है। तमाम अमानवीय यातनाएँ दलित महिलाओं को जातिभेद के कारण दी जाती हैं, जिनसे उनका मनोबल गिरता है और उनकी मानवीय गरिमापूर्ण अस्मिता आहत होती है। यह एक लम्बी कहानी है पर विषय की मार्यादा में रहते हुए अब हम प्रतिनिधि दलित कहानियों और उपन्यासों में चित्रित नारी स्थिति का अध्ययन करेंगे। सर्वप्रथम हम ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'जंगल की रानी'[49] की कथावस्तु का सार समझना चाहेंगे जो इस प्रकार है। एक डिप्टी साहब प्राईमरी स्कूल का मुआयना करने गाँव आये थे। वे स्कूल का मुआयना तो कम स्कूल की शिक्षिका कमला के सौन्दर्य का मुआयना अधिक करने लगे थे। मुआयना के दौरान उन्होंने कमली को अपने पास ही उलझाकर रखा था। वे कमली के आन्तरिक व बाह्य सौन्दर्य से मुग्ध हो गये थे। उनकी मुग्धता कमली को किसी तरह हासिल करने में चिन्तामग्न थी। अतः उन्होंने कमली को फंसाने हेतु योजनाबद्ध जाल बुना और उसे ग्रामीण 'महिला प्रशिक्षण शिविर' के लिए शहर भेज दिया। महिला शिविर के उद्घाटन समारोह में उपस्थित शहर के एस. पी. और विधायक दोनों महानुभावों को भी उन्होंने अपने षड्यन्त्र में सम्मिलित कर लिया। वे विश्राम-गृह में उपस्थित कमली का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। वहाँ घटित घटना कुछ इस प्रकार है—

जीप की आवाज सुनते ही तीनों की बांछें खिल गईं। कमली को वे खास लोग बुरी तरह बाँध कर लाये थे। मुँह में कपड़ा फंसा था। कमरे में लाते ही उसे खोल दिया गया। अपमान की भट्टी में धधक रही थी वह।

---

49. जनसत्ता, रविवारी, 22 नवम्बर, 1987

कमली को देखते ही डिप्टी साहब बेकाबू हो गए थे। भूखे तेंदुए से टुट पड़े कमली पर। कमली आक्रमण से बेखबर स्थिति को समझने का प्रयास कर रही थी कि उसकी चीख निकल गई। चीख विश्राम–गृह की दीवारों से टकरा–टकरा कर गुम हो गई थी। उसने डिप्टी साहब को एक झटके से अलग कर दिया अपने ऊपर से। वे कपास के बोरे की तरह एक और लुढक गए। वह दरवाजे की ओर भागी। दरवाजा बंद हो चुका था। असहाय कमली दरवाजा पीटने लगी। तब तक एस. पी ने उसे दबोच लिया।

कमली के भीतर जंगल जाग चुका था। वह जंगली जानवरों से अपनी सुरक्षा के लिए संघर्ष कर रही थी। शरीर के कपड़े चिथडों में बदल गए। चिथडे घावों खरोचों को ढंकने में असफल होने लगे। संघर्ष चरम–सीमा पर था। डिप्टी साहब हाँफ रहे थे। कमली ने विधायक जी को फर्श पर पटकनी देकर दबा लिया। छाती पर चढकर पंजों में गर्दन दबोच ली। विधायक जी की आँखें साक्षात् दुर्गा–दर्शन कर रही थीं।

कानून के रखवाले और कमली के बीच वासना के युद्ध में शक्तिशाली संघर्षपूर्ण व्यक्तित्व की युवती होने के कारण कमली अपनी अस्मिता तो बचा सकी, किन्तु जान बचाने में वह सफल नहीं हो सकी। कमली के रूप में दलित वर्ग की स्त्री की स्थिति उजागर होती है और उनके प्रति शासन प्रशासन के अंगों की नीयत का यथार्थ चित्रण भी हुआ है। कहानीकार ने समाज में कथित सभ्य, वरिष्ठ और जिम्मेदार पदों पर रहने वाले व्यक्तियों के मुख से नकाब तो हटाया है किन्तु ये नकाबधारी किस जाति, किस वर्ग के व्यक्ति हैं? कहानी में ऐसा उल्लेख नहीं है। पात्रों के नाम, उपनाम के बजाय उनके पदों में उन्हें परिचित कराया गया है।

'अंधेरी बस्ती'[50] 'यह अन्त नहीं'[51] आदि कहानियों में नई पीढ़ी के युवाओं में अपने परिवार और समाज की नारियों पर हो रहे दैहिक आक्रमणों के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति आई है तो कहानी 'रीत'[52] का नायक अपने पूर्वजों से चली आ रही उस सामंती रीत को तोड़ता है, जिसमें नवविवाहिता को पहली रात जमींदार के घर गुजारनी पड़ती है।

यह अन्त नहीं की नायिका बिरमा के साथ बलात्कार करने के इरादे से की गई छेड़खानी को उजागर किया गया है। बिरमा का भाई और उसके मित्र जब थाने में रिपोर्ट दर्ज करने गए तो पुलिस ने रिपोर्ट तो नहीं लिखी बल्कि पुलिस इंस्पेक्टर ने कटाक्ष करते हुए कहा—"छेड़खानी हुई है...बलात्कार तो नहीं हुआ...तुम लोग बात का बतंगड़ बना रहे हो। गाँव में राजनीति फैलाकर शान्ति भंग करना चाहते हो। मैं अपने इलाके में गुंडागर्दी नहीं होने दूँगा...चलते बनो।"

कुछ क्षण उनके बाहर निकलने का इंतजार किया। वे टस से मस नहीं हुए तो कुटिल मुद्रा बनाकर बोला "फूल खिलेगा तो भौरे मंडरायेंगे ही...।"[53]

पुलिस इंस्पेक्टर के रूप में यहाँ एक सवर्ण पुरुष का सामंती चरित्र उजागर हुआ है। यहाँ उसका कथन उसकी मनःस्थिति को दर्शाता है। यह नारी, नारी होने के कारण अपमानित नहीं हो रही। उसके पीछे उसका दलित स्त्री होना प्रमुख है। यदि इस द्विज जाति के पुलिस इंस्पेक्टर को पता चल जाए कि जिस नवयौवना को फूल और उस पर भौंरे मंडराने की बात करके व खुश हो रहा है। यदि यही युवती उसकी जाति की होती तो क्या वह खुशी के साथ उक्त व्यंग्य करता? वास्तव में वह इस तरह का

---

50. ओमप्रकाश वाल्मीकि — अंधेरी बस्ती, निर्णायक भीम, अगस्त 1980
51. ओमप्रकाश वाल्मीकि — यह अन्त नहीं, वर्तमान साहित्य (कहानी-विशेषांक), जनवरी-फरवरी 1998
52. मोहनदास नैमिशराय — रीत, गरिमा भारती, मार्च, 1988
53. ओमप्रकाश वाल्मीकि — यह अन्त नहीं, वर्तमान साहित्य, जनवरी-फरवरी, 1998, पृ. 103

अपराध करने वाले का खून करने का प्रयास करता। इस तरह यह कहानी, हमारे देश में कानून–व्यवस्था का अंग मानी जाने वाली पुलिस में जातिभेद की आपराधिक मानसिकता को उजागर करती है।

नारी गाँवों के गैर–दलित जमींदार, मुखिया प्रधान और सरपंच इत्यादि की गिद्ध दृष्टि मात्र से घायल नहीं होती बल्कि शहरों, कस्बों के लाला और सेठों की कुदृष्टि से दलित नारी छली जाती रही है। रत्न कुमार सांभरिया की कहानी क्षितिज की नायिका रेवती दो–दो जगह छली जाती है।

ससुराल में जमींदार की हवश की शिकार होती है जब सास–बहू खेत में घास छील रही थी, नानक सिंह के आगमन से पहले वो दोनों चौंकी। बाद में नानक सिंह ने बुढ़िया को दूसरे खेत में जानवर भगाने का आदेश देकर उसे टाला, फिर निरीह रेवती पर भूखे शेर की तरह झपटा। नानक सिंह की उद्दण्डता को निम्न अनुच्छेद द्वारा समझा जा सकता है—

"नानक सिंह मानवीय सदाचार और सदाशयता की सीमा लांघकर बेहूदगी और धृष्टता पर उतर आया। उसने रेवती का हाथ पकड़ लिया। वह दहल उठी। रेवती चिल्लाई तो नहीं लेकिन छुड़ाने के लिए छटपटाने लगी। अब नानक सिंह ने उसे अपनी बांहों के आगोश में समेट लिया था। इस वक्त निरीह और असहाय रेवती की दिशा छिपकली के मुँह में फँसी तितली जैसी हो गई थी।"[54] किन्तु जब रेवती ने अपनी इज्जत पर प्रहार होता देखा तो बचाव हेतु नानक सिंह नाक पर खुरपा का वार कर दिया। उसकी नाक कट कर लटक गई। घायल नानक सिंह भागा। यहाँ रेवती ने

---

54. रत्नकुमार सांभरिया — क्षितिज, सुमन लिपि, बंबई, नवंबर 1995, पृ. 30

साहसपूर्वक अपनी अस्मिता बचा ली, किन्तु नानक सिंह के आतंक ने उन्हें गाँव छोड़ने पर मजबूर कर दिया।

रेवती जमींदार के चंगुल से बचकर शहर में पति सोमा के साथ मजदूरी करने आती है तो यहाँ भी उस पर वृद्ध लाला सुखप्रसाद की गिद्ध-दृष्टि पड़ती है, क्योंकि उसके पति सोमा की झोपड़ी के पीछे लाला के घर का पिछवाड़ा था। वह अपनी बूढ़ी देह की परवाह न कर सुबह-शाम को रेवती को हृदयकलिका के रूप में देखता था। वह रेवती की ओर आँख दबाता, जेब बताता, कानों के टॉप्स दिखाता, पैंडल की चेन चुटकी में पकडकर रेवती की ओर झुलाता। भांति-भांति के प्रलोभन देकर उसने रेवती को पटाने की लाख कोशिश की, लेकिन वह थी कि उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती थी। यहाँ रेवती का चरित्रवान होना चित्रित होता है जो छल-बल दोनों से अपने आपको यौन शोषण का शिकार होने से बचा लेती है। किन्तु लाला के हृदय में छिपी क्रोधाग्नि की लपटों से वह बुरी तरह झुलस जाती है। सर्दी लगने से उसके पति सोमा की मृत्यु हो जाती है। पति की लाश पर बिलखती रेवती पर पति की हत्या का मिथ्या आरोप लगाकर पुलिस उसको उत्पीडित कर गिरफ्तार करती है। पुलिस की दृष्टि में दलित नारी की विडंबनापूर्ण स्थिति की झलक निम्न संवाद में देखी जा सकती है—

"मैं सब जानता हूँ ऐसी धंधेवालियों को, कपडों की तरह से आदमी बदलती हैं। एक को मारा दूसरे से आँख लडाई।"[55]

"इस...हत्यारी को गाड़ी में डालो। थाने पहुँचते ही सब कुछ उगल देगी। दारोगा ने सिपाहियों की ओर देखा।"

---

55. रत्नकुमार सांभरिया — क्षितिज, सुमन लिपि, बंबई, नवंबर 1995, पृ. 33

एक सिपाही रेवती का हाथ पकड़कर उसे घसीटने लगा तो सिपाही के सारे हाथ खून से सन गए। रेवती ने सोमा के वियोग में जो चूड़ियाँ फोड़ी थीं उसके काँच कलाई में धंस रहे थे। सिपाही ने रेवती का हाथ छोड़ कर हथेली देखी तो उसके हृदय में दया उमडी।

दरोगा ने उसे कर्त्तव्य से विमुख होता पाया तो मोटी-मोटी आँख निकालकर आदेश की अवहेलना करने के बारे में उसे चेता दिया। सिपाही ने रेवती की कलाई को फिर पकड़ लिया और गाड़ी की ओर घसीट कर ले जाने लगा। रेवती अपने बच्चे को छाती से दबा कर धरती से चिपक गई।

रेवती का प्रतिकार देखकर दारोगा ने उसकी पीठ पर ऐसा डंडा मारा कि नील उभर आई। डंडे की तीक्ष्ण मार से वह तड़प उठी। कभी दूसरा डंडा न आ पडे, वह स्वयं ही गाड़ी की ओर चल दी।

इस प्रकार 'क्षितिज' कहानी में दलित नारी की वेदना बहुत ही यथार्थ रूप में उभरकर सामने आई है। सामाजिक सोच का स्तर और कानून-व्यवस्था का बिंब भी सटीक रूप से उभरता है। अपराधी की निरपराध को अपराध के आरोप में फंसाता है। रेवती का अपराध लाला के प्रलोभनों में न फंसना था। लाला उसे अपराधी साबित कर देता है। लेखक ने समाज में लाला सुख प्रसाद जैसे पूँजीपतियों और कानून व्यवस्था की मुखौटेधारी रक्षक पुलिस की संकीर्ण मानसिकता को दिखाने का प्रयास किया है जिसमें रेवती की रोटी के लिए गाँव से शहर भागकर मजदूरी करने आना पड़ता है। वह गाँव और शहर दोनों जगह छली और ठगी जाती है। वह अपनी देह और दिमाग दोनों पर दलित विरोधी समाज व्यवस्था के प्रहार झेलती है, जबकि वह निर्दोष है। वह सीधी, सरल, स्वाभिमानी और सद्‌चरित्र स्त्री है। प्रश्न उठता है कि

क्या दलित स्त्रियों का सद्चरित्र और ईमानदार बनना अपराध है? इसकी सजा रेवती जैसी नारियों को कब तक झेलनी पड़ेगी?

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'अपना गाँव' की छमिया (कबूतरी) अपने पति सम्पत की अनुपस्थिति में बेहद मजबूर विवश और निरीह नारी है।

ठाकुर का मझला जब उसे पूरे गाँव में निर्व करके घुमाता है, तो समस्त गाँववासी मूक बने जिन्दा लाश समान देखते रहते हैं। कोई प्रतिकार नहीं करता। वह अकेली प्रताड़ित और अपमानित होती रहती है। उसका पति सम्पत पुलिस में रिपोर्ट दर्ज अवश्य कराता है, परन्तु पुलिस भी उसको शाब्दिक रूप से अपमानित करती है। उसके जखम कहानी की कमला जमींदार रणवीर सिंह द्वारा यौन शोषण की शिकार होती है। अपने संरक्षण के लिए वह अपने न्यायालय का दरवाजा खटखटाती हैं, पर उसे वहाँ भी न्याय नहीं मिलता है।

क्या दलित स्त्री मात्र गैर-दलित समाज के पुरुषों के दैहिक उत्पीड़न की ही शिकार है? उसकी समस्या मात्र यही है, ऐसा नहीं है। कथा साहित्य में अन्य समस्याओं को विस्तार से भले ही नहीं उठाया गया है, किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि दलित समाज में पुरुष प्रधानता के मूल्य नहीं है।

दलित उपन्यासों में दलित नारी वहीं आर्थिक अभावों, शारीरिक और मानसिक स्तर पर बलात्कार की यातनाओं को झेल रही है तो दूसरी ओर गैर-दलित नारी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और शिक्षित हो रहे समाज में नेतृत्वकारी भूमिका निभा रही है।

उपन्यासकार डॉ. धर्मवीर के पहला खत उपन्यास में स्त्री के प्रति ये मूल सुधार सम्बन्धी प्रश्न भी उभरते हैं। वे जहाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के नकारात्मक पक्ष

को सामने लाते हैं, वहीं दूसरी ओर स्त्री की भौतिक स्थिति का अधिकार केवल औरतों को दिया जाए क्योंकि पुरुषों को इसकी जरूरत नहीं है और उन्होंने बच्चों को उनकी माताओं से दूर करके इसका दुरूपयोग भी किया है। जब ढाई वर्ष तक का बच्चा माँ की छाती से दूध पीता है तो बच्चे को पालने के लिए सम्पत्ति का अधिकार औरत को मिलना चाहिए। पुरुष उस सम्पत्ति का अलग से क्या करेगा?"[56] रचनाकार की प्रस्तुत मान्यता और उनके उपर्युक्त विचार न सिर्फ प्रशंसनीय है बल्कि प्रेरक भी है। स्त्री की सम्पत्ति का अधिकार देने की बात लिखकर यहाँ वे प्रगतिशील दिखाई देती है।" किन्तु सवाल उठता है कि क्या स्त्रियों को व्यवहारिक जीवन में सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त हो सकता है? उनको सम्पत्ति के अधिकार से बेदखल रखना उसकी अवनति के कारकों से महत्त्वपूर्ण कारक है। अच्छा होता डॉ. धर्मवीर ने स्त्रियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के बजाय इसी समस्या को अपने लेखन का मुख्य विषय बनाया होता तो देश की ही नहीं विदेश की महिलाओं का भी सहयोग उनको मिल रहा होता।

इन उपर्युक्त सभी प्रश्नों के अध्ययन के उपरान्त कहा जा सकता है कि उपन्यासकार नारी के बारे में में है। उनके सोचने और देखने का दृष्टिकोण एकदम मौलिक, व्यावहारिक और अब तक के दृष्टिकोणों से अलग है तो कहीं-कहीं अपवाद को लेखक ने नमूना मान कर कुछ स्त्री विषयक विवादास्पद प्रश्न अवश्य खड़े कर दिए हैं। उन्हें नकारा नहीं जा सकता। इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित कथा-साहित्य में नारी की स्थिति अत्यन्त सोचनीय है। वह पुरुष-प्रधान तथा जाति-प्रधान व्यवस्था का शिकार है। वह तिहरी दासता के स्तर का जीवन जी रही है। उसकी मुक्ति का सवाल समाधान की माँग करता है।

---

56. डॉ. धर्मवीर भारती — पहला खत, पृ. 26

यह कहानी यथार्थ के काफी नजदीक है। आये दिन अखबारों के पन्नों पर इस तरह की घटनाएँ पढ़ने को मिलती हैं। दलितों से सम्बन्ध होने के कारण उन पर कोई सख्ती से कानूनी कार्यवाही नहीं होती। मात्र औपचारिकता होती है। लगता है, इस तरह की घटनाओं को देख कर हमारे समाज व कानून नियंताओं की संवेदनाएँ शून्य हो गई हैं।

आज समस्त मूल्य बदल गए है। इस युग की नारी बहुत जाग्रत है। अपने शोषण के विरुद्ध उसकी वाणी में विरोध का स्वर गूँजने लगा है। वह चुपचाप जुल्म सहन नहीं करती वह अपने अधिकार के प्रति सजग है और अपनी सुरक्षा के लिए उसे आज सभी पारम्परिक मूल्यों से लड़ना पड़ रहा है। नारी ने आधुनिकता को अपना चरित्र बना लिया है। स्वातंत्र्य चेतना की इस नवीन मूल्य व्यवस्था ने उसे उड़ने को पंख तो दिये हैं किन्तु उसके डैने टूटे हुए हैं, उसका जीवन अभी भी एक विवश आत्मसमर्पण ही है। अतः स्वतन्त्र जीवन यापन की समग्र मूल्य चेतना के प्रति ही उसका विश्वास डावांडोल होने लगता है। उसकी स्थिति रमेश बख्शी शुतुरमुर्गी की सी बताते हैं। "हम पंखयुक्त पंखहीन पक्षी हैं। हमारे पंख तो देखने भर के हैं, वे खूबसूरत हैं, कीमती हैं और ऐसा नारी जीवन हिंदुस्तान के हर घर में पाया जाता है।" कमलेश्वर के शब्दों में "नारी स्वातंत्र्य हाथी के दांत है जिन्हें हर घराना खूबसूरती के लिए लगाए रखता है।"

अब बदलते परिवेश के कारण नारी के अंदर चेतना की लहर आई है और उसके कार्य क्षेत्र का फलक काफी विस्तार पा चुका है। उसे अपनी आत्माभिव्यक्ति तथा अस्तित्व के स्वतन्त्र निर्माण के लिए संयुक्त परिवार की अनुकूल नहीं लगती इसलिए संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था का विघटन हो रहा है।

नारीवादी कथाकार उन सामाजिक प्रथाओं का विरोध करते हैं जो कि समान अधिकार भावनाओं की बजाय, अपने अधिकारों को त्यागने की प्रवृत्ति को बढ़ावा

देती है। यह भावना लड़कियों में खास तरह खास संस्कार विकसित करती है। यह संस्कार बाद में रूढ़ रूप ले लेते हैं। संस्कृति और समाज द्वारा निर्धारित, संकुचित लैंगिक भूमिकाओं के कारण कुंठित सम्भावनाओं वाली अनेक जिंदगियों की तरफ से आवाज उठाती हुई लेखिकाएँ, विचारधारा के नाम पर की जाने वाली निरर्थकताओं को उजागर करती हैं। सदा से सामाजिक कुरीतियों का सबसे ज्यादा नारी वर्ग होता आया है। आज भी महिलाएँ इस पुरुष प्रधान समाज में अन्याय और शोषणपरक व्यवस्थाओं का शिकार बनी हुई हैं।

नारीवादी कहानियों के नारी पात्र सचेत एवं जागरूक है। यह सभी पात्र जीवन स्थितियों में बिखरे हुए हैं जो शोषण के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। उसके लिए इन्हें अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है परन्तु ये नारी पात्र इसके लिए तैयार है। इस जागरूकता से यह एहसास होता है कि मानव-स्थिति की तकलीफों का शिकार नारी ज्यादा होती है अधिक पाने की कोशिश में कुछ थोड़े को भी उसे खोना पड़ रहा है। फिर भी यह नारियाँ साहसी है जो टूट जाना पसंद करती है हारना नहीं।

इस प्रकार नारीवादी कथाकारों ने 'धर्म एवं आस्था' तथा 'परम्परा एवं मूल्यों' में समय के साथ परिवर्तन होना आवश्यक माना है। किसी भी सम्बन्ध को वे तब तक ही निभाना चाहती है जब तक वे उसके व्यक्तित्व निर्माण में बाधा न प्रस्तुत करें। समाज की जड़ व्यवस्था में वे परिवर्तन की आकांक्षी है। सामाजिक कुरीतियों का वे पुरजोर विरोध करती है। शोषण के प्रति आज नारी विरोध की मुद्रा में है जो उसकी चेतना के विविध आयामों के सक्रिय होने से सम्भव हो सका है।

❑

षष्ठ अध्याय

हिन्दी कथा–साहित्य में दलित चेतना के प्रमुख साहित्यकारों का व्यक्तित्व व कृतित्व

21वीं सदी के साहित्यकारों ने अपनी कलम से मानव मन को जागृत किया है, उनमें चेतना पैदा की है। हिन्दी साहित्य में प्रतिपादित दलित जीवन हिन्दू समाज की वर्ण व्यवस्था के शिकार लोगों का चित्रण है, भले ही वह चित्रण अधिक न हो, परन्तु दलितों की आम समस्याओं का चित्रण अवश्य है। दलित जीवन के ये विचार वर्ण व जाति व्यवस्था की गुलामी से मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। दलित जीवन आधुनिक समाज में एक ओर हिन्दु समाज की जाति व्यवस्था की ज्यादतियाँ और सामाजिक संरचना की असंगतियाँ दलित को किस प्रकार झिंझोड़ती है, अपमानजनक स्थितियों में जीने को मजबूर करती हैं, इस अवस्था की पोल खोलने का कार्य हिन्दी साहित्य में अनेक दलित एवं गैरदलित साहित्यकारों ने किया है, जिसमें प्रमुखतः ओमप्रकाश वाल्मीकि, रमणिका गुप्ता, डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, माताप्रसाद, साहित्यकारों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से साहित्यकार है, जिन्होने दलित साहित्य पर पूरी तटस्थता के साथ लिखा है और आज भी लिख रहे हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि हिन्दी में दलित जीवन का साहित्य अपने विकास के सोपान सर कर रहा

है। प्रवर्तमान युग में पर्याप्त सीमा तक इसका प्रचार-प्रसार भी हो रहा है। नये-नये रचनाकार उभरकर सामने आ रहे हैं।

दलित साहित्य समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व की स्थापना का साहित्य है। वह दलित अस्मिता के लिए संघर्ष का साहित्य है लेकिन दलित समाज के सामने सवाल यह है कि क्या स्वयं दलित लेखकों के सृजनात्मक चिन्तन के बिना दलित अपनी अस्मिता को प्राप्त कर पायेंगे? इसी चेतना के परिणामस्वरूप वर्तमान में दलित लेखकों ने अपनी लेखनी चलाकर अपना सृजनात्मक जज्बा दिखाया है।

हिन्दी दलित लेखक या साहित्यकार साहित्य की सभी विधाओं में सृजन की ओर अग्रसर दिखाई दे रहे हैं। चाहे वह आत्मकथा, कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक या कोई भी विधा हो। साहित्यकार जैसा यथार्थ चित्रण उपन्यास में वर्णित करता है वैसा विधा में नहीं। इसलिए वर्तमान में महान दलित साहित्यकार उपन्यास विधा को मुख्यधारा में लाने का सफल प्रयास कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य में दलित लेखकों ने दलित विधा को पौध से उठाकर विशाल वटवृक्ष में प्रतिष्ठित किया है। यह केवल स्वातन्त्र्योत्तर लेखन काल की ही नहीं, अपितु इक्कीसवीं सदी की बहुत सारी विलक्षणताओं में एक विशिष्ट विलक्षणता है। विद्या निर्णयन के सभी तत्त्व विद्रोह-विस्फोट, नकार स्वर, मानवीयता, समाजिक चरित्र-चित्रण, देशकाल, वातावरण, भाषाशैली आदि इस पौध में दिखाई देने के कारण दलित साहित्य विधा परिनिष्ठित हो गयी। दलित साहित्य विधा को सरताज चढ़ाने तथा उसे संरक्षण देने में हिन्दी दलित साहित्य यात्रा में विपुल कलमकारों ने योगदान दिया है। इन सभी रचनाधर्मियों की सर्जना भारतीय साहित्य में उल्लेखनीय है।

आज दुविधाजनक परिवेश में कथनी और करनी में विसंगति पाकर विषय, व्यक्ति, शैली एवं जीवन के विभिन्न आयाम में दलित विधा प्रगति के रास्ते पर आगे बढ़ रही है। दलित साहित्य के कलम के सिपाही ने पैनी दृष्टि से असंगति तक पहुँचकर प्रस्तुत विधा का विकास किया है। आज की घटित विभिन्न दलित–अदलित संघर्ष की विभिन्न घटनाएँ, प्रसंगों को विधा के माध्यम से सफलतापूर्वक उद्‌घाटन किया है। आज जीवन के नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है। इन मूल्यों को उर्जितावस्था में लाने का यत्न दलित साहित्य के कारवाँ में शरीक होने वाले विपुल हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने दलित साहित्य विधा के विकास में योगदान दिया है। प्रस्तुत अध्याय में हमें इन सबकी पहचान करनी है।

दलित साहित्यकारों की श्रेणी में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, अनिता भारती, डॉ. एन सिंह, तेज सिंह, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, रत्नकुमार सांभरिया, सुशीला टाकभौरे, जयप्रकाश कर्दम, रूपनारायण सोनकर, अजय गवरिया आदि की कलम दलित साहित्य को स्पर्श कर रही है। अन्य काफी नाम दलित साहित्य में गिनाये जा सकते हैं। इन साहित्यकारों में से कुछ दलित साहित्यकारों का परिचय देने का प्रयास मैंने इस अध्याय में किया है—

1. कावेरी

दलित साहित्यकारों की श्रेणी में कावेरी का अन्यतम स्थान है क्योंकि दलित महिला लेखन में कावेरी ही एक ऐसी साहित्यकार हैं जिन्होंने उपन्यास सृजन का कार्य

अपने ऊपर लिया है। अभी तक कावेरी जी ने ही दलित उपन्यास पर अपनी महिला उपन्यासकार होने की अमिट छाप छोड़ी है।

कावेरी का जन्म सन् 1951 ई. में थानाटिहरी गाँव में, जो कि पहले गया जिले के अन्तर्गत आता था और वर्तमान में जहानाबाद जिले के अन्तर्गत आता है, हुआ। इन्होंने मैट्रिक तक गाँव में ही शिक्षा प्राप्त की और मैट्रिक पास करने के बाद कावेरी जी की शादी हो गई। फिर इन्होंने इलहाबाद में अपनी पढ़ाई जारी रखी। कावेरी जी ने अपनी पढ़ाई के साथ-साथ अपने बच्चों की परवरिश भी की। साथ ही इन्होंने प्राइवेट स्कूल में अध्यापन का कार्य भी किया।

कावेरी जी इण्डियन आयल स्कूल बरौनी में शिक्षिका बनी और बाद में डी.वी.सी. में शिक्षिका बनी तथा इण्टर कॉलेज में पढ़ाते हुए सेवानिवृत्त हुई। इन्हें अपने बड़े भैया राजेन्द्र प्रसाद से लिखने की प्रेरणा मिली।

कावेरी जी ने स्नातकोत्तर की डिग्री हिन्दी विषय में प्राप्त की। पहले गाँव में भैया राजेन्द्र प्रसाद ने हरिजन हितैषीपुत्र पालनगृह खोले। इनका परिवार संयुक्त होने के कारण इन्हें अपने जीवन में काफी संघर्ष करने पड़े। इनके ससुर भी 1940 के स्नातक उत्तीर्ण थे जो कि कलकत्ता से पढ़े हुए थे। इन्हें अपने पति डॉ. दयानन्द बटोही (प्रसिद्ध दलित रचनाकार), जिन्होंने 1966 ई. में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की, उनसे भी लेखन की प्रेरणा मिली।

कृतित्व

उपन्यास—

मिस रमिया (आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद)

कहानी संग्रह

1. द्रोणाचार्य एक नहीं

2. अभावों में पलता स्वाभिमान

नाटक

डिप्टी कलेक्टर का साला

काव्य–संग्रह

1. उजली हँसी के छोर पर

2. नदी बहती रही

3. डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर

4. राजा साहेब

जीवनी

दलित कहानीकारों का आत्मसंघर्ष

सम्पादन

साहित्य यात्रा, नई लहरें

आलोचनात्मक रचनाएँ

1. रमणिका गुप्ता के उपन्यास 'मौली' और आदिवासी समाज व संस्कृति

2. वर्तमान समय में लेखिकाओं का दायित्व

3. दलित समाज में स्त्रियों की शिक्षा के प्रति सम्मान

4. नागार्जुन के उपन्यासों में नारी चेतना

5. रामधारी सिंह दिनकर और उनका पात्र कर्ण ('रश्मिरथी' में)

पुरस्कार

पत्र-पत्रिकाओं व आकाशवाणी से अनेक पुरस्कार। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से कई पुरस्कार। इलाहाबाद के महामन्त्री शास्त्री ने कावेरी को डॉ. की ओनरेरी डिग्री प्रदान की।

2. अजय नावरिया

साहित्यकार अजय नावरिया का जन्म 6 जून, 1972 को दिल्ली के एक गाँव काटेला मुबारकपुर में हुआ। इनके पिता का नाम श्री शिवचरण और माता का नाम श्रीमती दौलत है। इनके बड़े भाई भारतीय रेल्वे में 'सैक्शन इंजीनियर' के पद पर कार्यरत हैं। इनका परिवार एक श्रमिक परिवार था। इनके पास खाने के लिए कुछ भी नहीं था जबकि पाने के लिए हजारों रूकावटें थी। नावरिया जी पर पढ़ाई के लिए कोई दबाव नहीं डाला गया। नावरिया जी की पढ़ने में कुछ अधिक ही रुचि थी। इनके पिता जी की यह इच्छा थी कि सभी भाई-बहन पढ़े-लिखे। नावरिया जी हमेशा प्रथम व द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होते थे। नावरिया जी ने सारी शिक्षा-दीक्षा दिल्ली से पूरी की है। इन्होंने मैट्रिक व वरिष्ठ माध्यमिक की परीक्षा सी.एस.सी. बोर्ड से पास की है। दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री प्राप्त की तथा 1993 ई. में बी.एड. की डिग्री प्राप्त करने के बाद उसी साल इनकी नौकरी लग गई। इन्होंने सर्वप्रथम राजस्थान के केन्द्रीय विद्यालय में अध्यापन किया। दूसरी नौकरी इनकी फिल्म समारोह

निदेशालय, सूचना एवं प्रसारण विभाग में लगी। जे.एन.यू. से इन्होंने एम.फिल् व पी-एच.डी. की। भारतीय अनुवाद परिषद् से डिप्लोमा करने के बाद सन् 2007 में जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में इनकी नौकरी लग गई और अभी भी नावरिया जी जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं।

नावरिया जी का विवाह 25 जनवरी, 1998 को दिल्ली में हुआ। इनके एक बेटा व एक बेटी है। नावरिया जी हँसमुख स्वभाव के व्यक्ति तथा गम्भीर साहित्यकार हैं। जब भी मैंने शोध कार्य करते समय स्वयं को दुविधाग्रस्त पाया तो मुझे इनसे पूर्ण सहयोग मिला। इससे पता चलता है कि ये सहयोगी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति हैं। इन्होंने समाज को जिस रूप में देखा है, उसे अपने उपन्यास में उजागर किया है। नावरिया जी समकालीन दलित रचनाशीलता में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उभरे हैं।

नावरिया जी बचपन से ही अध्ययनशील व जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। अत्यधिक अध्ययन और दूसरों के दु:खों की गहरी अनुभूतियों ने ही इन्हें साहित्य लेखन की ओर प्रवृत्त कर दिया। इन्होंने 12वीं कक्षा से ही सामाजिक विषयों पर कविताएँ लिखनी प्रारम्भ कर दी थी। नावरिया जी के प्रेरणा स्रोत मुँशी प्रेमचन्द जी हैं। लगातार साहित्य अध्ययन करते हुए इनकी मुलाकात रचनाकार राजेन्द्र यादव, संजीव, अखिलेश, उदय प्रकाश और ओमप्रकाश वाल्मीकि से हुई।

कृतित्व

उपन्यास

उधर के लोग (यह सन् 2008 में राजकमल से प्रकाशित हुआ है।)

कहानी संग्रह

पटकथा और अन्य कहानियाँ (कोहरा प्रथम कहानी, 1994; काले चिंटे, 1996; उसर में काष्ट की एसधम्म संतनो)

संपादन

हंस के 'दलित विशेषांक', 2004 और 'नैतिकताओं का टकराव पर' केन्द्रित अंक 2005, सहसंपादक-रामशरण जोशी, युद्धरत आम आदमी-एक विशेषांक, डॉ. उदित राज के लेख (पुस्तक 2004)

पुरस्कार

सुधा साहित्य सम्मान, 2007

हिन्दी अकादमी पुरस्कार

साहित्यिक गतिविधियाँ

जनवादी लेखक संघ, दलित लेखक संघ, कथाक्रम, संगमन की ओर से व्याख्यान दिये।

3. सत्यप्रकाश

दलित उपन्यासकार के रूप में अपनी पहचान बनाने वाले सत्यप्रकाश जी का जन्म 5 जनवरी, 1962 में वैराफिरोजकर (बुलन्दशहर) उत्तर प्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम श्री देवकी सिंह व माता का नाम श्रीमती कौशल्या देवी है। इनकी पत्नी का नाम श्रीमती सरोज बाला है। इन्होंने अर्थशास्त्र व हिन्दी में स्नातकोत्तर उत्तीर्ण

किया है। ये विधि में भी स्नातक हैं। वर्तमान में ये भारत सरकार के कृषि मन्त्रालय में सहायक निदेशक (राजपत्रित अधिकारी) के सरकारी पद पर कार्यरत हैं।

कृतित्व

उपन्यास

जस-तस भई सवेर (सागर प्रकाशन, नई दिल्ली से सन् 1999 में प्रकाशित।)

कहानी संग्रह

1. चन्द्रमौलि का रक्तबीज

2. सायरन

3. एक और राज्याभिषेक

4. बिरादरी भोज

शोध आलेख

1. विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सद्भावना प्रासंगिकता।

2. महिलाओं की वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं भारतीय परिवेश में सामंजस्य की समस्या।

3. जातीय उत्पीड़न व विभेद का अन्तर्राष्ट्रीयकरण।

4. धर्मान्तरण पर बवाल।

5. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और साहित्य।

6. आर्थिक आतंकवाद के चक्रव्यूह में आम आदमी।

7. स्वातन्त्र्योत्तर भारत में महिला कृषक

8. राजभाषा हिन्दी के बढ़ते सोपान

पुरस्कार

1. डॉ. अम्बेडकर साहित्य फैलोशिप सम्मान, 1997, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
2. अस्मितादर्शी साहित्य सृजन पुरस्कार, 1999, भारतीय दलित
3. अकादमी मध्यप्रदेश, डॉ. अम्बेडकर साहित्य महामहोपाध्याय सम्मान, 2001, अस्मितादर्शी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश।
4. तथागत बुद्ध फैलोशिप सम्मान, 2012

अनूदित कृतियाँ

1. बौद्धधर्म 'द रिलीजन ऑफ मोहनजोदड़ो एण्ड हडप्पा सीटिज' मूल लेखक—डॉ. स्वप्न कुमार विश्वास।
2. ए फाइव टेक्नीक ऑफ मेनेजमेंट — श्री टेकचन्द महताब।
3. न बाबरी मस्जिद, न राम मन्दिर, वह बुद्ध विहार — भदन्त आनन्द कोसल्यायन।
4. पश्चिमी बंगाल में दलित साहित्य आन्दोलन — कपिल कृष्ण ठाकुर।

4. प्रेम कपाड़िया

प्रसिद्ध दलित लेखक व रचनाकार श्री प्रेम कपाड़िया का जन्म 8 जुलाई, 1953 को हुआ। इन्होंने शैक्षिक डिग्रीयाँ ज्यादा प्राप्त नहीं की थी लेकिन इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य के लिए बिताया। समय-समय पर इन्होंने बिहार, मध्यप्रदेश, गुजरात, हरियाणा, राजस्थान में आयोजित राज्यस्तरीय कार्यशालाओं, कार्यक्रमों में शरीक होकर संगठनात्मक और विकासात्मक गतिविधियों को सिर्फ अंजाम ही नहीं दिया बल्कि वंचित समाज की दशा और दिशा पर संकलित विषयों का प्रकाशन भी करवाया।

कपाड़िया जी के व्यक्तित्व व कृतित्व के सम्बन्ध में भारतीय सामाजिक संस्थान, नई दिल्ली के अनुसूचित जाति कार्यक्रम विभाग में अधिकारी पद सँभाल रहे श्री कमलकान्त साद का यह संवेदना प्रपत्र सहायक सिद्ध हो सकता है, जो मुझे उन्हीं से बड़ी मुश्किल से प्राप्त हो सका।'हम दलित' पत्रिका के अस्तित्व के लिए उन्हें कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।

प्रेम कपाड़िया जी व कमलकान्त का यह संवाद—

प्रेम कपाड़िया ने मुझसे कहा—कमल जी! मुझे बचा लीजिए। बिल्कुल लाचार हो गया हूँ। मैं अब घर-घर जाकर भीख ... और इतना कहकर बिलख-बिलख कर रोने लगे। मैं भी अपने आँसूओं को रोक नहीं सका। फिर अपने को सम्भाला और उनसे पूछा—"क्या चाहते हैं हमसे प्रेम जी!"

प्रेमजी ने कहा—"अपनी इलाज और दवाई के लिए कुछ पैसे।"

मैंने फिर पूछा—"अभी तुरन्त कितने पैसों से काम चल जायेगा? बाद में फिर कोशिश करूँगा।"

उन्होंने कहा—"हजार, पन्द्रह सौ रुपये।"

मैं तुरन्त प्रेम जी को लेकर संस्थान के एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर के पास गया और उनको सारी बात बताई। उन्होंने मुझसे कहा कितने पैसे चाहिए। मैंने कहा—"तीन हजार।" और वे तुरन्त फाइनेन्स डिपार्टमेंट से पैसे लेकर आ गये। मैंने उन्हें तुरन्त अच्छी तरह इलाज कराने की सलाह दी और विदा कर दिया। इससे उनके सहज व्यवहार का पता चलता है।

एक दिन प्रेम जी की पत्नी व छोटा लड़का समीर मेरे दफ्तर में आये और रोते-रोते उन्होंने मुझे बताया कि प्रेम जी अब नहीं रहे। मैंने माँ-बेटे को सान्त्वना देते हुए चाय-पानी कराया और कहा कि हम आप लोगों के साथ हैं।

उनके परिवार में पत्नी, तीन पुत्र (समीर, धर्मराज, दीपराज) व एक पुत्री (सुधा) है। प्रेम जी का 18 मई, 2013 को अपने निजी क्षेत्र के अस्पताल में निधन हो गया। वे दलित साहित्य जगत में हमेशा अविस्मरणीय रहेंगे।

कृतित्व

उपन्यास

मिट्टी की सौगन्ध (भारतीय सामाजिक संस्थान, नई दिल्ली)

कहानियाँ

1. प्यार की जीत

2. अपमान

3. जीवनसाथी

4. औरत नहीं खिलौना

लेख

1. नवभारत टाइम्स

2. हिन्दूस्तान

3. जनसत्ता

4. राष्ट्रीय सहारा

5. कुरुक्षेत्र

6. समाज–कल्याण आदि पत्र–पत्रिकाओं में लेख।

सम्पादन

1. हम दलित (मासिक परिवर्तित नाम —— हाशिये की आवाज) 1990 से।
2. दलित उत्पीड़न : उत्तर प्रदेश की दासता।
3. हरियाणा के दलित : हरित क्रान्ति से भी वंचित –डॉ. रामावतार गौतम व प्रेम कपाड़िया।
4. नई सदी भी तोड़ नहीं पाई उत्तर प्रदेश में अछूतपन को —— प्रेम कपाड़िया व डॉ. प्रकाश लुइस।

5. रूपनारायण सोनकर

रूपनारायण सोनकर का जन्म 4अप्रेल, 1962 ई. को गाँव नसेनिया, तहसील बिंदकी, जिला फतेहपुर उत्तरप्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम माननीय एम.पी. सोनकर था। इन्होंने स्नातक की परीक्षा पास करने के बाद विधि में स्नातक की डिग्री भी प्राप्त की। दलित साहित्य में उपन्यासकार के नाम से विख्यात रूपनारायण सोनकर का विशिष्ट स्थान है। ये लगातार दलित साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेकर समाज सेवा में व्यस्त रहते हैं। वर्तमान में ये निबन्ध अधिकारी, देहरादून में कार्यरत हैं।

सोनकर जी की अभिव्यक्ति दलितों में नयी चेतना का प्रसार करती है। सोनकर का अनुभव जगत व्यापक है। व्यापक अनुभव जगत में विहार करने वाला ही व्यापक एवं मूल्यवान साहित्य का निर्माण कर सकता है। सोनकर की कहानियों की चर्चा व्यापक मात्रा में हुई है। 'जहरीली जड़े' इनका प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। लेखक ने दलित सर्जकों में नयी परम्परा स्थापित करने को ललकारा है। लेखक का मानना है कि आज तक जो साहित्य निर्मित हुआ, इसमें मात्र दलितों की वेदना को व्यक्त किया गया जबकि अब ये यातना दलित पात्र नहीं सहेंगे किन्तु अन्य सहेंगे। सबको विदित है कि इक्कीसवीं शताब्दी ज्ञान की सदी है। अत: ज्ञान पर किसी का इजारा नहीं होता। ज्ञान तो हर व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार एवं क्षमता के अनुसार प्राप्त कर सकता है, कोई ज्यादा तो कोई कम। वस्तुत: समकालीन समय में सारे भारत वर्ष में दलित सर्जकों ने कमाल कर दिया। आज तक दलित सर्जक दूसरों के मोहताज थे, अब ये दिन चले गये हैं। आज कोई दलित सर्जक किसी का मोहताज नहीं है। हरेक लेखक

अपना-अपना दृष्टिकोण रखकर दलित साहित्य में नया प्रकरण जोड़ रहा है। ये बड़े फक्र की बात है।

कृतित्व

उपन्यास

1. सुअरदान, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010

2. डंक, अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010

कहानी संग्रह

1. जहरीले जड़े (कफन, सद्गति, दूध का दाम)

2. आत्मकथा, नागफनी, 2005

नाटक संग्रह

1. विषधर (12 नाटक)

2. रहस्य एक दलित डिप्टी कलक्टर, छायावती महानायक, समाजद्रोही आदि नाटक।

सम्मान

1.गौरव भारती — उत्तराखण्ड सरकार द्वारा 1997 में।

2. हिन्दी गौरव — उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा 1999 में।

3. डॉ. अम्बेडकर विशिष्ट सम्मान, नई दिल्ली सरकार द्वारा 1999 में।

4. साहित्य महोपाध्याय (डी.लिट्), उत्तराखण्ड सरकार द्वारा 2004 में।

5. डॉ. अम्बेडकर विशिष्ट उत्तराखण्ड सम्मान, उत्तराखण्ड सरकार द्वारा 2005 में।

6. नाट्य रत्न सम्मान।

अभिनय

1. टी.वी. सीरियल 'सपने' व 'मंजिल' में अभिनेता का किरदान निभाया।
2. फीचर फिल्म 'ईंट का जवाब पत्थर से' एवं 'अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों' में चरित्र अभिनेता का किरदार निभाया।
3. एक टेलीफिल्म 'रात भर की बात' में नेता का अभिनय किया। हास्य व्यंग्य नाटक 'साहब की भैंस' आकाशवाणी द्वारा प्रसारित।

अन्य

1. मेरी 'कफन' कहानी व मुँशी प्रेमचन्द की 'कफन' कहानी पर 'पत्रिका' कार्यक्रम में विचार गोष्ठी सम्पादित।
2. 'कफन' कहानी पर टेलीफिल्म 'कफन' छवि फिल्मस प्रोडक्शन द्वारा निर्मित।

पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशन

इण्डिया टूडे, आउटलुक, कादम्बिनी, हंस, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, दैनिक जागरण, अमर उजाला, राष्ट्रीय सहारा, दून दर्पण, पंजाब केसरी आदि समाचार पत्र सोनकर जी की रचनाओं को स्थान दे रहे हैं।

6. मोहनदास नैमिषराय

वरिष्ठ लेखक एवं पत्रकार मोहनदास नैमिषराय का जन्म 5 सितम्बर, 1949 ई. को मेरठ शहर जिला उत्तर प्रदेश में हुआ। उन्होंने स्नातक, स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण कर बी.एड. का प्रशिक्षण प्राप्त किया। सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्ति के बाद भी इन्होंने लेखन को ही अपना कैरियर बनाया। नैमिषराय के पिता श्री सूर्यकान्त उत्तरप्रदेश स्तर पर 'डिस्प्रेस्ड लीग' के अध्यक्ष थे। नैमिषराय जी का स्वभाव विद्यार्थी जीवन से ही संघर्षशील था। ये फक्कड़, मस्तमौला और बेबाक कवि थे। इसी बेबाक व्यक्तित्व के कारण वे पत्रकारिता के क्षेत्र में आगे बढ़े। इन्होंने अपने उपन्यासों में बम्बई शहर की भीड़भाड़ भरी जिन्दगी को चित्रित किया है।

वर्तमान में दिल्ली में रहकर स्वतन्त्र लेखन कर रहे हैं। ये लेखक के साथ-साथ पत्रकार के रूप में भी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

लम्बे समय से वे दिल्ली में रह रहे हैं। इन्हें हिन्दी, अंग्रेजी तथा मराठी भाषाओं का ज्ञान था। दिल्ली में रहते हुए मोहनदास नैमिषराय अनेक संस्थाओं से जुड़े और बाबा साहेब अम्बेडकर के आन्दोलन को साथियों के साथ मिलकर आगे बढ़ाते रहे।

कृतित्व

उपन्यास

1. मुक्तिपर्व (अनुराग प्रकाशन, दरियागंज)

2. वीरांगना झलकारी बाई (ऐतिहासिक उपन्यास) राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर (धम्म ज्योति चैरिटेबल ट्रस्ट, नई दिल्ली)।

4. आज बाजार बन्द है (वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली)।

5. क्या मुझे खरीदोगे (श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली)।

कविता संग्रह

1. सफदर एक बयान (मानव विकास प्रिंटर्स, नई दिल्ली)।

2. आग और आन्दोलन

नाटक

1. अदालतनामा (दलित साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली)।

2. हैलो कामरेड (सर्वस्व फाउंडेशन, नई दिल्ली)।

आत्मकथा

अपने-अपने पिंजरे, भाग 1 व 2 (वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1995-96)

कहानी संग्रह

आवाजें।

आलोचनात्मक पुस्तकें

1. भारतरत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर

2. आत्मदाह

3. संस्कृति : उद्‌भव और विकास, 1991

4. बाबा साहेब : उनके संस्मरण, 1993

5. अम्बेडकर डाइरेक्टरी, 1993

6. उजाले की ओर बढ़ते कदम, 1997

7. विरोधियों के चक्रव्यूह में डॉ. अम्बेडकर

8. बहुजन समाज

9. डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

10. भारत के अग्रणी समाज सुधारक

11. हिन्दी में रेडियो नाटक

12. भारतीय दलित आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास

13. दलित पत्रकारिता में राजनीतिक व सामाजिक चिन्तन

14. 1857 की क्रान्ति में दलितों का योगदान

15. दलित साहित्य आन्दोलन (पाँच खण्ड) (सम्पूर्ण दलित साहित्य के अध्ययन हेतु)

अनुवाद

1. हिन्दुत्व का दर्शन, 1991

2. डॉ. अम्बेडकर और काश्मीर समस्या, 1997

सम्पादन

1. भीम सैनिक, पाक्षिक 1970-71

2. समता, मासिक, 1971-72

3. कथा लोक, मासिक, 1977-78

4. बहुजन अधिकार, पाक्षिक

5. संचेतना, मासिक

6. लोकायन समीक्षा, मासिक

7. क्रान्तिधर्मी, मासिक

8. डॉ. अम्बेडकर पत्रिका, मासिक

9. न्याय चक्र, मासिक

10. सामाजिक न्याय सन्देश, मासिक 2002-2003

पुरस्कार

1. अम्बेडकर स्मृति पुरस्कार, अनुसूचित जाति विकास परिषद्, नई दिल्ली, 1993

2. पत्रकारिता अवार्ड, पीपुल्स विक्टरी, नार्थ एवेन्यु, नई दिल्ली, 1993

3. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1998

4. वाणिज्य हिन्दी ग्रन्थ पुरस्कार, वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार, 1995

5. बिरसा मुण्डा सम्मान, रमणिका फाउण्डेशन, नई दिल्ली, 2003

6. गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार, राष्ट्रपति, भारत सरकार द्वारा 2006

7. सृजन सम्मान, माध्यमिक शिक्षा मण्डल, 2008

7. माताप्रसाद जी

माताप्रसाद का जन्म अक्टूबर, 1925 जौनपुर जिला मछली शहर के एक गरीब दलित परिवार में हुआ था। वर्तमान में माताप्रसाद जी 20/25 इन्दिरा नगर, लखनऊ में रहते हैं।

उनकी शिक्षा हिन्दी, उर्दू, मिडिल, हाई स्कूल, साहित्य रत्न, एच. टी. सी. की है। सन् 1946 से 1954 तक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एवं प्राईवेट शिक्षा संस्थाओं में अध्यापन कार्य किया। तथा सन् 1957 से 1977 तक उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य, 1980 से 1992 तक विधान परिषद् के सदस्य रहे। साथ ही राजस्व मन्त्री उत्तर प्रदेश सरकार में रहे। सन् 1988 से 1989 तक, अरूणाचल प्रदेश के राज्यपाल भी रहे सन् 1994 से 2000 तक।

माताप्रसाद जी का कृतित्व

हिन्दी लोकगीतों में दलित चेतना—लोकगीत लोक मानस की अभिव्यक्ति हैं लोक मानस में गाँव के अपनढ, गरीब, दलित, पिछड़े लोग और स्त्रियाँ ही अधिक संख्या में हैं, इसलिए लोक गीतों में इन्हीं की भावनाओं के स्वर मुखरित होते हैं। लोक गीतों में जहाँ मंगलदायक और सुख दायक स्वर लहरी होती है वहीं दु:ख दर्द एवं पीड़ा की पुकार भी।

लोकगीत गाँव वालों के हृदय की झंकार और भावों के उद्‌गार हैं। लोक गीत जन्म, संस्कार, विवाह, वियोग, व्यथा आदि से सम्बन्धित होते हैं। राजा दशरथ, इनमें सामन्तवाद के प्रतीक रूप में चित्रित होते हैं। यह गीत सवर्ण जाति की स्त्रियाँ अधिक गाती है।

दलित जाति की स्त्रियों के अधिकतर लोकगीत व्यथा और पीड़ा से भरे होते हैं। यह अपने समाज पर बीती स्थितियों को गाती चली आ रही है। लोकगीत की छोटी-छोटी कड़ियाँ इतिहास को समझने में सहायता करती है। लोक गीत दलित समाज की संस्कृति की धाती है। इनसे दलित समाज की पुरानी स्थिति को भी समझने में सहायता मिलती है। गाँवों में कुछ बूढ़ी स्त्रियाँ इसकी बड़ी कुशल गायक होती है। दलित समाज में आने वाली पढ़ी-लिखी बहुएँ इससे बिल्कुल अनभिज्ञ हैं।

इस प्रकार लोकगीतों का अधिक सम्बन्ध ग्रामीण क्षेत्र के अनुसूचित जन जातियों, पिछडें और महिलाओं से अधिक है। पूर्वजों के जीवन की विभिन्न परिस्थितियों, अपने ऊपर बीती व्यथा और आनन्द को लयात्मक ढंग से गाकर ये मनोरंजन करते हैं या थकान मिटाते हैं। ये लोक गीत परम्परा से इनके यहाँ गाते हुए चले आ रहे इनका लिखित रूप नहीं है। ये एक व्यक्ति के नहीं पूरे समाज की स्थिति को व्यक्त करते हैं, इसलिए समय बीतने पर इनके शब्दों में कुछ बदलाव आता रहता है लेकिन भाव नहीं बदलते।

जिस समय देश में सामन्तवाद का बोल बाला था उस समय गरीबों की सुनने वाला कोई नहीं था। उनका शोषण और उत्पीड़न होता था वे चूं भी नहीं कर सकते थे। "जबरा मारे रोवे न देय" की स्थिति थी। उस समय का वर्णन एक लोक गीत में

है। जिसमें हिरन-हिरनी शोषितों के रूप में दिखाये गये हैं। रानी कौशल्या सामन्तवाद की प्रतीक है। गीत इस प्रकार हैं—

"छापक[1] पेड़ छिउलिया[2] त, पतवन गहबर हो,
रामा तेहितर ठाढि हरिनियाँ त, मन अति अनमन हो,
चतरइ चरत हरिनवा त, पूछइ[3] हरिनियाँ से हो,
हरिनी की तोर चरहा[4] झुरान[5] कि पानी बिनु मुरझिक हो।"

नाटक

माताप्रसाद ने 'अछूत का बेटा' (1990) नाटक में मन्दिर प्रवेश के संदर्भ में पेश आई अस्पृश्यता की समस्या को नाटक का मुख्य विषय बनाया है। मूलन सिंह जगदेव चमार के बेटे शिवराम की शिक्षा के विरुद्ध अनधिकृत दबाव डालता है। वह कहता है—"अब तुम उसे पढ़ा कर क्या करोगे? उसे डिप्टी-कलेक्टर बनाना नहीं है। पढ़ाई छुड़ा क्यों नहीं देते, कुछ कमाने भी लगेगा।" सलाह का प्रभाव उस पर नहीं पड़ता देख वह तुरन्त धमकी की भाषा बोलने लगता है यानी अपने असल रूप में आ जाता है। "यदि हमारा काम नहीं चला तो हम देखेंगे कहाँ निकलते-बैठते हो। जानवरों के लिए घास छीलना बन्द कर दूँगा। आने-जाने का रास्ता नहीं मिल पाएगा। जिस जमीन पर तुम्हारा मकान है, वह भी हमारी जमीन है, रहना मुश्किल कर दूँगा।"[1]

माताप्रसाद का अभिनन्दन ग्रन्थ शिखर की ओर भी प्रकाशित होकर आया है। इसमें उनका राजनीतिक रूप अधिक सामने आया है। कवि होने के साथ-साथ

---

1. हिन्दी दलित कथा-साहित्य! अवधारणाएँ और विधाएँ — रजत रानी 'मीनू', पृ. 90

कथाकार भी है और उन्होंने नाटक भी लिखे हैं। पर उनमें राजनीति के तत्व आखिरकार शामिल हो ही गए है।

श्री माताप्रसाद का साहित्य में योगदान निम्न प्रकार है—

1. दलित जाति सम्बन्धी लोकगीत, एकलव्य (खण्ड-काव्य)
2. भीम-शतक (प्रबन्ध-काव्य)
3. हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा (आलोचना)
4. अछूत का बेटा (नाटक)
5. धर्म के नाम पर धोखा (नाटक)
6. वीरांगना झलकारीबाई (नाटक)
7. वीरांगना ऊदादेवी पासी (नाटक)
8. प्रतिशोध (नाटक)
9. अन्तहीन बेडियाँ (संयुक्त एकांकी नाटक)

श्री माताप्रसाद जी का राजनीति व साहित्य में बराबर-बराबर का हस्तक्षेप रहा है। इसलिए दलित साहित्यकारों के साथ माताप्रसाद जी का जुड़ाव है। लेखन में अम्बेडकर का कम गाँधीजी का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है।

दलित कहानी-लेखन पर राजनीति का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। साथ ही ग्रामीण पंचायती राजनीति पर सवर्णों के एकाधिकार के दुरुपयोग का चित्रण भी किया गया है, किन्तु उपन्यासों में प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभाव नहीं पड़ा है। अप्रत्यक्ष प्रभाव भी बहुत अधिक नहीं है। प्रकारान्तर से सम्पूर्ण दलित कथा-साहित्य में सामाजिक, जातिगत और आर्थिक समस्याएँ ही प्रमुख रूप से उभरी है। इसलिए दलित उपन्यासों में राजनीतिक चेतना का समावेश अत्यन्त सीमित है।

माताप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा' में दलित शब्द के अनेक प्रयोगात्मक अर्थो की चर्चा की है, जिनमें 'चाण्डाल', 'अस्पृश्य', 'अछूत', आदि शामिल है। 'उपेक्षित', अपमानित, उत्पीड़न, प्रताडित' भी इसी कोटि में आने वाले शब्द हैं। शब्द के व्यापक सामाजिक अर्थों में 'गुलाम', 'भूमिहीन', 'बंधुआ' भी शामिल है।

माताप्रसाद के अनुसार "दलित वर्ग के अन्तर्गत अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ और विमुक्त जातियाँ सभी आ गईं।" [2]

8. श्यौराज सिंह बेचैन

जन्म—गाँव-नदरोली, बदायूं (उत्तर प्रदेश), शिक्षा—पीएच.डी., डी.लिट्।

श्यौराज सिंह जी की प्रकाशित रचनाएँ—

'भरोसे की बहन (कहानी संग्रह),

'क्रोंच हूँ मैं' और 'नई फसल' (कविता संग्रह)

हिन्दी दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव (शोध-प्रबंध, लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्डस् 1999 में दर्ज), 'समकालिन हिन्दी पत्रकारिता में 'दलित उवाच', 'दलित क्रान्ति का साहित्य', 'मूल खोजो विवाद मिटेगा', 'अन्याय कोई परम्परा नहीं', दलित दखल, स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका, मीडिया, उत्तर आधुनिक अस्पृश्यता के दौर में उत्तर सदी के हिन्दी कथा, साहित्य में दलित-विमर्श आदि।

---

2. माताप्रसाद —'हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1993, पृ. 4

श्यौराज सिंह बेचैन का कृतित्व—

दलित साहित्य

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन के शब्दों में—"भारतीय समाज विविधताओं का समाज है। जहाँ आहार-विहार, रोटी-बेटी के रिश्ते, धर्म-जातियों के भेद, जन्म और मौत तक की यात्राएँ अपने ही जाति समूहों में सीमित हो, वहाँ समाज के सबसे ऊपरी स्तर का व्यक्ति सबसे निचली सीढ़ी के समाज के साथ अन्तरंगता स्थापित कर लेता है। यह सामान्य बात नहीं हैं। गाँधी जी की अपीलों और सुधारकों की कोशिशों के बावजूद स्वतन्त्रता मिलने के इन 60 सालों में इस दिशा में प्रगति कम दुर्गति अधिक हुई हैं।"[3]

कहानी

श्यौराज सिंह बेचैन के शब्दों में—"एक पीढ़ी गुलामी अंधकार में डूब गई और नई पीढ़ी उजाले की ओर है। यूं यह कहानी तमसो मा ज्योतिर्गमय की कहानी है।"[4]

दलित साहित्य एक उद्देश्य पूर्ण लेखन है। सामाजिक विषमता, सांस्कृतिक-साहित्यिक पराधीनता दलितों की सामाजिक गुलामी को स्थाईयित्व देती रही है। ऐसे में दलित साहित्यकार लूथरकिंग, नेल्सन मंडेला और बराक ओबामा के रंग और नस्ल के खिलाफ किए गए संघर्षों के स्वदेश के गाँधी-अम्बेडकर विवाद अछूतानन्द-प्रेमचन्द अलगाव, रैदास-कबीर, तुलसीदास का पंथ भेद के अन्तरद्वन्द्वों को समझते हुए अपने मौलिक और अलग पहचान के ऐतिहासिक रास्ते पर आगे बढ़ रहा है। दलित लेखक जब विचार-युद्ध लड़ रहे होते हैं तो उन्हीं में से अस्पृश्य-

---

3. हिन्दी दलित कथा-साहित्य! अवधारणाएँ और विधाएँ, रजत रानी 'मीनू' — हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, पृ. 31
4. हिन्दी दलित कथा-साहित्य! अवधारणाएँ और विधाएँ, रजत रानी 'मीनू' — हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, पृ. 148

बहिष्कृत वर्ग से निकल कर विरोधी धारा के मंच से दलित लेखकों पर हमले करते हैं। प्रमाणिक हमले खुले होते हैं। इनके माकूल जवाब दे दिए जाते हैं, परन्तु जो भीतर गत के रूप में होते हैं उनका कोई इतिहास नहीं बन पाता, गद्दारी लिपिबद्ध नहीं हो पाती और दासता के कारणों को दीर्घजीवी बनाने वाले कारक चिह्नित नहीं हो पाते। इस तरह बहुसंख्यक जीवन की त्रासद स्थितियों के लिए कोई भी जिम्मेदार नहीं ठहराया जाता और पराधीनता का सामाजिक पहाड़ टस से मस नहीं हो पाता।

कविता

धार्मिकता और कूपमंडूकता पर व्यंग्य प्रहार करते हुए उस वफादार जानवर को/ देखकर संदेह हुआ कि /कदाचित हिन्दु शा / सच में भटक गए हैं जो कहते हैं कि/ कुत्ता/पूर्वजन्म का पुजारी होता है।"[5] कविता की यह पंक्ति–हिन्दु शा भटक गए है। सीधी–सपाट होते हुए भी व्याख्या की माँग करती है। हिन्दू शा के भटकने की बात कहने की हिम्मत और समझ इस वर्ग में सदियों बाद आ सकी है।

आत्मकथा

श्यौराज सिंह बेचैन की आत्मकथात्मक कहानी 'अस्थियों के अक्षर'[6] की नारी सौराज की माँ घर में एक रुपया चोरी होने की सजा पाती है। सजा से पूर्व उससे एक रुपया चोरी करने के बारे में पड़ताल भी नहीं की जाती है। शक–शुबहा के आधार पर उसे मारा–पीटा जाता है। उसका पति भिखारी और देवर उल्ला पुरुष प्रधानता के अहं में उसको शारीरिक प्रताड़ना देना अपना अधिकार समझते हैं, जबकि उसका कोई अपराध नहीं है। उसने रुपया चोरी नहीं किया है। इस घटना में मुख्य

---

5. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — डॉ. श्योराजसिंह बेचैन, पृ. 77
6. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य : हिन्दी दलित कथा साहित्य में स्त्री — डॉ. श्योराजसिंह बेचैन, पृ. 145

कारण यह भी है कि सौराज सौतेला बेटा है और उसकी 'माँ' भिखारी की दूसरी पत्नी। सौराज की माँ को जानवरों से भी अधिक बेरहमी से पीटा जाता है। वह मात्र एक रुपया चोरी होने की सजा झेलती है। दूसरी तरह सौराज में पढ़ने की भूख रोटी से बढ़ कर है। जैसे एक भूखा खाने की चीजें चोरी करता है तो बालक सौराज पहली कक्षा की एक किताब को पाने के लिए चाचा डल्ला है तो बालक सौराज पहली कक्षा की एक किताब खरीद लेगा। वह लाला की दुकान पर जाता है। तभी छोटेलाल को देखते ही वह रुपया नाली के पास फेंक देता है यह सोच कर कि जब वह चले जाएंगे तब उठाकर किताब ले लेगा। मगर उसके ज्ञान की भूख अतृप्त ही रह जाती है। उस रुपया को उसी तरह किसी जरूरतमंद ने उठा लिया होगा। इस आत्मकथात्मक कहानी का शिल्प, घटनाक्रम बड़ा ही मार्मिक है। कहानी अभावग्रस्त दलित समाज की चित्र हमारे सामने रखती है। जिसमें सौराज की माँ की स्थिति अत्यन्त सोचनीय है।

श्यौराज सिंह बेचैन ने अपनी आत्मकथा 'मेरा बेचपन मेरे कंधों पर' में कवि ने लिखा है—

टूटी डाल झरीं सब पत्तियाँ
डाल हुई लाचार
विधाता ने कैसी विपदा डारी रे
माँगत फूल हवा और पानी
रितु निरमोहित ने का ठानी
काते कहें कौन दु:ख बांटे
कौन करे रखवारी रे।[7]

---

7. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य, शिक्षा न्याय और दलित गये कविता — डॉ. श्योराजसिंह बेचैन, पृ. 229

आत्मकथा

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की आत्मकथा तीन खण्डों में 'बचपन मेरे कन्धो पर', 'बेवक्त गुजर गया माली', जीवित बचा स्वराज' के कुछ अंश हिन्दी के मासिक पत्र 'हंस' और 'वाक' में प्रकाशित होने के बाद चर्चा का विषय बने है। उनकी आत्मकथा जो कि तीन खण्डों में प्रकाशित हो रही हैं, दलित-संवेदनाओं, संघर्षों से पूर्णतया लबरेज है। उनका एक खण्ड 'बचपन मेरे कन्धों पर' और दूसरा 'बेवक्त गुजर गया माली' के नाम से प्रकाशित हो रहा है।"[8]

श्यौराज सिंह बेचैन अपनी बाल्यावस्था किशोरावस्था और युवावस्था के संघर्षों की आग में तपकर सोने की भांति दलित समाज के लिए एक प्रेरक व्यक्तित्व के रूप में चमक उठे है। दलित जीवन-मूल्यों की दृष्टि से इस आत्मकथा में चित्रित छोटे से छोटे प्रसंग भी अर्थवान बन पड़ा है, जिसके किसी प्रसंग को समेटना या छोड़ना बहुत गैर वाजिब है। अतः पाठक को इस हृदयस्पर्शी आत्मकथा की गहराई को समझने और महसूस करने के लिए स्वयं इसका अध्ययन करना होगा।

डॉ. श्यौराजसिंह बेचैन आत्मकथा 'चमारका' में दलितों के साथ सवर्णों का जो व्यवहार रहा है, उसके विषय में लिखते हैं, "धन्य है मेरा देश भारत! किस वर्ग से बढ़कर है यह देश, जहाँ मेरी माँ बहनों की तुलना पशुओं से की जाती है और उनसे पशु जैसा आचरण किया जाता है। सदियों से शब्दों के पत्थर फेंके जाते रहे हैं। हमारी ओर। हम उनके सेवक जो ठहरे, तो आज मैं इन्हें वापस करता हूँ। स्वीकार हो हजूर! दलित लौटाना चाहता है आपको आपकी भाषा आपका व्यवहार।"[9]

---

8. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — श्यौराजसिंह बेचैन, पृ. 292
9. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — श्यौराजसिंह बेचैन, पृ. 256

9. ओमप्रकाश वाल्मीकि

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, 1950 गाँव–बरला, जिला–मुजफ्फर नगर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। इनकी मृत्यु 17 नवम्बर, 2013 में देहरादून (उत्तराखण्ड)में 63 वर्ष की उम्र में हुई थी।

उपजीविका—रचनाकार थे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी शिक्षा अपने गाँव देहरादून से प्राप्त की। उनका बचपन सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाईयों में बीता। आरम्भिक जीवन में उन्हें जो आर्थिक, सामाजिक और मानसिक कष्ट झेलने पड़े उसकी उनके साहित्य में मुखर अभिव्यक्ति हुई। वाल्मीकि कुछ समय तक महाराष्ट्र में रहे। वहाँ वे दलित लेखकों के सम्पर्क में आए और उनकी प्रेरणा से डॉ. अम्बेडकर की रचनाओं का अध्ययन किया। इससे उनकी रचना दृष्टि में बुनियादी परिवर्तन हुआ वे देहरादून स्थित आर्डिनेंस फैक्टरी में एक अधिकारी के रूप में काम करते हुए अपने पद से सेवानिवृत हो गए।

कृतित्व

दलित साहित्य की अवधारणा

वाल्मीकि के अनुसार दलितों द्वारा लिखा जाने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। उनकी मान्यतानुसार दलित ही दलित की पीड़ा बेहतर ढंग से समझ सकता है और वही उस अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सकता है। इस आशय की पुष्टि के तौर पर रचित अपनी आत्मकथा जूठन [2] में उन्होंने वंचित वर्ग की समस्याओं पर ध्यान आकृष्ट किया है।

प्रमुख कृतियाँ

कविता संग्रह—

1. सदियों का सन्ताप।

2. बस बहुत हो चुका।

3. अब और नहीं।

4. शब्द झूठ नहीं बोलते।

कहानी संग्रह—

1. सलाम।

2. घुसपैठिए, अम्मा एंड अदर स्टोरीज, छतरी

आत्मकथा—

जूठन (अनेक भाषाओं में अनुवाद)

आलोचना—

1. दलित साहित्य का सौन्दर्यशा ,

2. मुख्यधारा और दलित साहित्य,

3. सफाई देवता।

दलित साहित्य—

अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

नाटक—

दो चेहरे, उसे वीर चक्र मिला था।

अन्य—60 से अधिक नाटकों में अभिनय, मंचन एवं निर्देशन, अनेक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनारों में भागीदारी।

सम्मान—उन्हें सन् 1993 में डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार सन् 1995 में परिवेश सम्मान, न्यू इंडिया बुक पुरस्कार, 2004 कथाक्रम समान 2001, 8वां विश्व हिन्दी सम्मेलन, 2006 न्यूयोर्क, अमेरिका सम्मान और साहित्यभूषण पुरस्कार (2008-2009) से अलंकृत किया जा चुका है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की पुस्तक 'बस्स'! बहुत हो चुका' की कई कविताओं में संघर्ष के ओर इसी तरह व्यक्तिगत अनुभूतियों के चित्र है। मुझे यह कहने में झिझक नहीं है कि ये यथार्थ और संघर्ष के कवि है। उनकी कविता के कुछ प्रसंग हैं—

कभी नहीं माँगी बालिश्त-भर जगह
नहीं माँगा आधा राज भी
माँगा है सिर्फ न्याय
जीने का हक, थोडा-सा आकाश।[10]

सामाजिक न्याय के सहारे दलित कविता में जुल्म के संघर्ष की और इसी तरह क्षोभ के अनेक प्रसंग है।

आत्मकथा

ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' में गाँव के भीतर जीवन की तस्वीर को दृष्टिगोचर करते हैं, "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था, लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपभोग खत्म, इस्तेमाल करो, दूर फेंको।"[11]

---

10. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, पृ. 209
11. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, पृ. 252

दलित साहित्य का सौन्दर्यशा

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित साहित्य का सौन्दर्यशा की भूमिका में दलित रचना एवं आलोचना के उदय के कारणों की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'दलित लेखकों द्वारा आत्मकथाएँ लिखने की जो छटपटाहट है वह भी स्थितियों की ही परिणति है। सामाजिक अन्तर्विरोध से उपजी विसंगतियों ने दलितों में गहन नैराश्य पैदा किया है। सामाजिक संरचना के परिणाम बेहद अमानवीय एवं नारकीय सिद्ध हुए है। सामाजिक जीवन की दग्ध अनुभूतियाँ अपने अन्तस् में छिपाए दलितों के दीन-हीन चेहरे सहमें हुए है। इन भयावह स्थितियों के निर्माता कौन है? दोहरे सांस्कृतिक मूल्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी होते रहने की अभिशप्त जनमानस की विवशता साहित्य के लिए जरूरी क्यों नहीं है? क्यों साहित्य एकांगी हो कर रह गया है? ये सारे प्रश्न दलित साहित्य की अंतः चेतना में समायोजित है।"[12]

ओमप्रकाश वाल्मीकि का प्रथम कविता संग्रह सदियों का सन्ताप 1989 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताओं में दलित संवेदना की बहुत यथार्थ और अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति हुई है। उनका दूसरा कविता संग्रह बस्स! बहुत हो चुका सन् 1997 में आया। कुल मिलाकर इस संग्रह में सदियों के सन्ताप से आगे की कविताएँ हैं।

शवयात्रा[13]

वर्तमान समय के प्रमुख दलित कहानीकर ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'शवयात्रा' विशेष चर्चा में रही है। अभी भी इस कहानी को हिन्दी आलोचक दो घरों की कहानी समझ कर उत्सुकता से उसके बारे में जानना चाहते हैं। परन्तु मैं जहाँ उन आलोचकों के रसास्वादन के लिए उसकी चर्चा नहीं कर रही हूँ। वैसे भी दलित

---

12. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श — देवेन्द्र चौबे, पृ. 196
13. हिन्दी दलित कथा-साहित्य अवधारणाएँ और विधाएँ — रजत रानी 'मीनू', पृ. 59

साहित्य का उद्देश्य मात्र रसास्वादन नहीं है। यह हमारे समाज की जटिल समस्याएँ हैं। समस्याओं का समाधान लेना चाहिए। इसमें राजनीति करने वालों से दूर रहने की आवश्यकता भी है। इसे एक आन्दोलन के रूप में ही देखना है। इन सब पहलुओं पर विचार के उपरान्त हम इसे ओमप्रकाश वाल्मीकि की प्रमुख कहानी मान सकते हैं क्योंकि इसमें दलितों के अन्तर्विरोध और आपस में समायोजन न होने की समस्या को उठाया गया है। यह इस तरह की पहली कहानी है, जिसमें स्वयं दलित लेखक ने डॉ. अम्बेडकर व रैदास के विचारों को दुशाले की तरह ओढ़ने वालो को आलोचना का पात्र बनाया है। ये लोग तथाकथित 'अम्बेडकरी' और रैदास मंडल समाज की एकता की चिन्ता किए बगैर अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करने में लगे रहते हैं। कहानी का सारतत्व यही सिद्ध करता है।

दलित साहित्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेखकों में से एक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है। मेरे सामने वे तमाम लोग प्रश्नचिह्न बनकर खड़े हैं जो मेहनतकश हैं, शोषित, पीड़ित और दलित हैं, जिन्होंने भारतीय समाज व्यवस्था का निकृष्टतम रूप चक्रवाती झंझावतों की तरह सहा है। उनकी बेबस चीखों ने मुझे हमेशा झिंझोड़ा है। कहानी हो या कविता, मैं अपने ही शब्दों से क्षत-विक्षत हुआ हूँ। हिन्दी साहित्य की सामन्ती, ब्राह्मणवादी प्रवृत्तियों ने जिन विषयों को त्याज्य माना, जिन्हें अनदेखा किया, उन पर लिखना मेरी प्रतिबद्धता है।"[14]

ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानियों में दलित विमर्श

दलित कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि एक सर्वश्रेष्ठ लेखक है। उनकी कहानियों में पीड़ा, अज्ञानता, अन्धश्रद्धा, पारिवारिक जीवन के तानव, नई पुरानी पीढ़ी का संघर्ष, सामाजिक विषमताएँ, आर्थिक समस्याएँ आदि चित्रण हुआ है।

---

14. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श — देवेद्र चौबे, पृ. 39

उन्होंने दलित जीवन के भोगे हुए यथार्थ को प्रामाणिकता के साथ सामने लाते हैं। 'जंगल की रानी' कहानी की नायिका आदिवासी कमली है। कमली गाँव की स्कूल में नौकरी करती है। ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर के दौर पर आये डिप्टी साहब की नजर कमली पर पड़ती है। कमली डिप्टी साहब के दिलों दिमाग पर छा जाती है। कमली को प्राप्त करने की बेचैनी उनमें बढ़ जाती है। वे कमली को अपने हवस का शिकार बनाना चाहते हैं। किन्तु जंगल की रानी के मंसूबों के आगे वे परास्त हो जाते हैं। कमली को प्राप्त करने की इच्छा पूरी नहीं हो पाती। अपने आत्म गौरव को बचाये रखने के लिए कमली अन्तिम सांसों तक संघर्ष करती है और अन्ततः लड़ते-लड़ते अपनी जान दे देती है किन्तु अपने घुटने नहीं टेकती।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने समाज से बहिष्कृत, अपेक्षित अस्पृश्य पद दलितों की व्यथा, वेदना, पीड़ा को वाणी प्रदान कर उनकी अछूती संवेदनाओं को व्यपाकता प्रदान की है।

10. जयप्रकाश कर्दम

जन्म–05 जुलाई 1958 को ग्राम–इन्दरगढ़ी, हापुड़ रोड़, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ। शिक्षा–एम.ए. (दर्शनशा , हिन्दी, इतिहास), पी.एच.डी (हिन्दी) से की।

निवासः बी-634, डी.डी.ए फ्लैट्स (चित्रकूट कॉलोनी), ईस्ट ऑफ लोनी रोड, दिल्ली-110093.

सम्मान/पुरस्कार—अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा सम्मान/पुरस्कार

जयप्रकाश कर्दम का कृतित्व

समकालीन हिन्दी साहित्य में जयप्रकाश कर्दम एक सुपरिचित और समादृत नाम है। जयप्रकाश कर्दम का लेखन—विविधायामी है। उनके लेखन में अनुभूतियों की सघनता, चिन्तन की गहराई और वैचारिक दृढ़ता का समावेश है। इस सबके केन्द्र में मनुष्य और मनुष्यता है। उनका साहित्य दलित समाज के संघर्षों और चुनौतियों की सार्थक अभिव्यक्ति है। उनके लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी बनी बनायी राह पर आँख बन्द करके नहीं चलते हैं अपितु अपनी चेतना के आलोक के आगे बढ़ते हैं और जहाँ आवश्यक हो अपनी अलग राह का निर्माण करते हैं। सृजनात्मक लेखन में वह जितने कुशल हैं, आलोचनात्मक लेखन में भी वह उतनी ही धार रखते हैं।

जयप्रकाश कर्दम 'छप्पर' नामक उपन्यास से चर्चा में आये। उन्होंने कहानियाँ भी लिखीं। जिसमें 'नौ बार' प्रगतिशील एवं लोकतान्त्रिक मूल्यों का समर्थन करने वाले आधुनिक परिवार की कहानी है। 'चमार' कहानी में बेटे को पढ़ाने के जुर्म में गाँव के सवर्ण सुक्खा का बहिष्कार करते हैं किन्तु सुक्खा हारता नहीं है। उसमें स्वाभिमान जाग चुका है। "वह भूखा प्राण देने तक को तैयार है, पर बेटे को नरक देने को नहीं।"[15]

कविता—जयप्रकाश कर्दम बिना किसी लाग-लपेट के सीधी सपाट शैली में कहते हैं—

'झूठे है वे लोग, जो कहते हैं कि,
देश में जातिवाद आखिरी सांस ले रहा है।
धोखेबाज है वे लोग, जो कहते हैं कि,
अस्पृश्यता का जनाजा निकल चुका हैं।
मक्कार हैं वे लोग, जो कहते हैं कि,

---

15. 21वीं सदी के कथा साहित्य में दलित चेतना — डॉ. सुनीता कावल्ले, पृ. 23

वर्ण–व्यवस्था अप्रासंगिक हो चुकी है।
जब तक स्मृतियाँ रहेंगी,
रामायण, गीता और वेद रहेंगे,
तब तक वर्ण शुचिता रहेंगी।"[16]

उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम एक वरिष्ठ अधिकारी भी हैं, लेकिन उनकी संवेदना ने उपन्यास, कहानी, कविता आदि विधाओं में अपनी लेखनी से दलितों के दु:ख–दर्दों को उकेरा है। छप्पर इनका अति वेदनायुक्त उपन्यास है। दलित साहित्य में इनकी पहचान छप्पर से है। 'गूंगा नहीं था मै' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं–

"गूंगा नहीं था मैं
बोल नहीं सकता था
जब मेरे स्कूल के
मुझ से कई क्लॉस छोटे
बेढंगे से एक जाट के लड़के ने
मुझसे कहा था
ओ–ओ मारिया
ज्यादे बिगड़ मत
कमीज को पैंट में दबा के
मत चल।"[17]

करुणा—जयप्रकाश कर्दम का पहला उपन्यास करुणा 1986 में प्रकाशित हुआ है। यह आकार–प्रकार में बेहद लघु है। बौद्ध धर्म की पृष्ठभूमि पर आधारित होना इसकी प्रमुख विशेषता है। नायक रमेश, नायिका करुणा मुख्य भूमिका में है।

---

16. 21वीं सदी के कथा साहित्य में दलित चेतना — डॉ. सुनीता कावल्ले, पृ. 20
17. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य — डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, पृ. 240

नायक रमेश एक जिम्मेदार बेटा, भाई और समाज-सुधारक के रूप में उपस्थित है। वह निरन्तर बेरोजगारी की समस्या से झूझता है। वातावरण श्रीमती इन्दिरा गाँधी के समय बलात् परिवार नियोजन लागू करवाने का है। रमेश अविवाहित होते हुए भी नसबन्दी करवाकर स्कूल की नौकरी बदले में पाता है। बेटे के इस दुःख को उसके माता-पिता सहन नहीं कर पाते। अन्त में वे एक-एक करके मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

समाज में यदि कुरीतियाँ होती हैं तो दलित भी उनसे अछूते नहीं रह पाते हैं। उसी दिनों समाज में दहेज की विकट समस्या मुंह फैलाए खड़ी थी। दलित भी उस काल के मुंह में समा रहे थे। लेखक का कथन है—"पर बौद्ध समाज में दहेज प्रथा जैसी कोई बात न थी। बस वर वधू की देखभाल और कुटुम्ब परिवार की परख ही सब कुछ था इसलिए रमेश को रीता के लिए वर तलाशने में अधिक कठिनाई न पहुँची और एक जगह लड़का देखकर उससे रीता की शादी तय कर दी।"[18] जहाँ बौद्ध धर्म के लोगों को सुधरने का रास्ता दिखाता है, मानव के दर्द को समझता है वहीं जब उन लोगों का व्यवहार परम्परागत लोगों की तरह होने लगता है तब बौद्ध धर्म की प्रासंगिकता पर भी प्रश्न खड़ा होता है। रमेश की बहन रीता जब अपने ससुराल का वंश चलाने में सफल नहीं होती तब उसके ससुराल वाले परम्परागत लोगों की तरह उसका शोषण करते हैं। उनका अत्याचार इस हद तक बढ़ जाता है कि वह आत्महत्या कर लेती है।

दलित साहित्य

डॉ. अम्बेडकर का सपना एक सुदृढ, समुन्नत और सुखी सम्पन्न राष्ट्र और समाज का सपना था जिसमें सब समान हो तथा सब परस्पर प्रेम, सहयोग और

18. हिन्दी दलित कथा : साहित्य, अवधारणाएँ और विधाएँ — रजत रानी मीनू, पृ. 77

बन्धुता के साथ रहें। कोई छोटा, बडा, ऊँचा, नीचा या सछूत अछूत न हो। इसके लिए उन्होंने जाति विहीन और वर्ग विहीन समाज की स्थापना की परिकल्पना की। इस तरह के समाज की रचना कैसे हो, यही उसके समग्र चिन्तन और सृजन का मूल विषय और आधार है। समाज, राजनीति, धर्म कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जिस पर डॉ. अम्बेडकर ने विचार एवं कार्य न किया हो। वैचारिक रूप से वह राजनैतिक क्षेत्र में लोकतन्त्र को सामाजिक क्षेत्र में मानवतावाद के आर्थिक क्षेत्र में समाजवाद के धार्मिक क्षेत्र में बुद्धवाद के तथा दार्शनिक क्षेत्र में अनात्मवाद के पक्षधर रहे। किसी भी प्रकार की असामनता और अन्याय को उन्होंने स्वयं देखा और भोगा था। उन पर जुल्म इसलिए होते हैं क्योंकि वे जुल्मों को सहते हैं। उनका कहना था कि अन्याय को सहना अन्याय को बढ़ावा देना है। इसलिए हर हालत में अन्याय का विरोध किया जाना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि अधिकार कभी भी माँगने से नहीं मिलते हैं, अधिकार छीने जाते हैं। इसलिए अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया जाना चाहिए।

❑

सप्तम अध्याय

उपसंहार

बीसवीं सदी का अन्तिम दशक दलित साहित्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इसी दशक में हिन्दी दलित साहित्य ने अपना विधागत विस्तार किया है। कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, निबन्ध, नाटक और आलोचना के क्षेत्र में ही नहीं अपितु अनुवाद और शोध के क्षेत्र में भी पर्याप्त लेखन हुआ है। दलित चेतना पर दलित लेखकों ने खूब लेखनी चलाई परन्तु सम्पूर्ण दलित साहित्य का सम्यक् मूल्यांकन अब तक नहीं हो पाया। सम्भवत: मैंने 20वीं सदी के अन्तिम दशक से 21वीं सदी के प्रथम दशक तक के सम्पूर्ण उपन्यासों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है।

हिन्दी दलित साहित्य का अध्ययन करते समय हम दलितों की विभिन्न परिस्थितियों से रूबरू हुए। दलित समाज में विद्यमान जीवन-विषयक विचारों और उन विचारों को प्रस्तुत करने वाली समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रविधि दलित समाज के सार्थक मूल्यांकन के लिए अधिक उपयुक्त साबित हुई। समाजशास्त्र में कार्य-कारण सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र के अनेक तत्त्व हैं जिनमें सामाजिक संरचना, सामाजिक समस्या और सामाजिक परिवर्तन जैसे घटक दलित कथा-साहित्य में मुख्य है।

समाजशास्त्रीय अध्ययन में लेखक व लेखक का युग, रचनाकार का तत्कालीन घटनाओं व विचारों से प्रभाव ग्रहण करना, उन विचारों को कृति में प्रस्तुत करना तथा उन विचारों के प्रति पाठकों की प्रतिक्रिया। लेखक अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। वह अपनी अभिव्यक्ति को अपनी रचना में उकेरता है और पाठकों के सामने समाज के परिवर्तनशील रूप को प्रस्तुत करता है, पाठक उस विषय में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अत: इस तरह बनने वाली प्रक्रिया समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति का सार रूप है।

आधुनिक युग में दलित समाज में चेतना जागृत हुई। उसने सामाजिक रूढ़ियों व परम्पराओं और अन्धविश्वासों के प्रति विद्रोह किया है। परिणामस्वरूप पुरानी मिथक मान्यताएँ टूटने लगी है और उसके स्थान पर नई मान्यताओं का जन्म हुआ है। जब पुराने मूल्य टूटने लगते हैं और नये परिवर्तनशील मूल्यों का विकास होने लगता है तो समाज में अन्तर्विरोध व विशृंखलता का माहौल बन जाता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दलित समाज को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों ने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दिशाओं में गतिरोध को जन्म दिया है। जन्मों से दलित समाज ने जो कष्ट झेले थे, अब वे उनसे मुक्ति की लालसा रखते हैं क्योंकि अब उनका देश परतन्त्र नहीं स्वतन्त्र है।

भारतीय समाज में युगों से वर्ण–व्यवस्था का प्रचलन है। इसमें समाज को चार वर्णों में बाँट दिया जाता है। साथ ही समाज में सवर्ण, शूद्र, ऊँच–नीच इत्यादि शब्दों की अनेक दीवारे बना दी जाती है। चेतना के कारण आज वर्ण–व्यवस्था के बन्धन ढीले होने लगे हैं। कुछ पुरानी पीढ़ी के लोग जातिगत चिन्तन से छुटकारा नहीं पाना चाहते हैं लेकिन जागरूक व शिक्षित व्यक्ति ने इस व्यवस्था को पूरी तरह नकार

दिया है। परिणामस्वरूप अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं क्योंकि शिक्षा सामाजिक विकास का मूलमन्त्र है। वह व्यक्ति का मानसिक विकास तो करती ही है साथ ही समाज में नई चेतना जागृत करती है तथा बौद्धिकता का प्रसार होता है। सदियों से शिक्षा के प्रकाश से दूर नारी जाति आज शिक्षित होकर बराबरी का हक माँग रही है।

'मिट्टी की सौगन्ध' की शीला दस जमात तक पढ़ी होने पर भी ठाकुर मोहन सिंह को जेल की सलाखों के पीछे करवा देती है। 'छप्पर' की कमला भी अपने बेनाम पिता की सन्तान (खिलाड़ी) को स्कूल भेजकर अपने शिक्षित होने का उदाहरण समाज के सामने पेश करती है। 'आज बाजार बन्द है' उपन्यास के सभी स्त्री पात्र चम्पा, चमेली, गुलाब, रूखसाना, बिल्किस, शम्मी, हमीदा, जीनत, पार्वती, हसीना, मुमताज, फूल और शबनम बाई सभी वेश्यावृत्ति का धन्धा छोड़कर इस मरघट से मुक्त होना चाहती है। इस प्रकार लगभग सभी उपन्यासों में स्त्री शिक्षित होकर पुरुष के समान बराबर का हक माँगने में आगे आ रही है।

दलित साहित्य भीमराव अम्बेडकर की प्रेरणा के फलस्वरूप निर्मित साहित्य है। यह साहित्य अनेक विरोधों व संघर्षों के बाद वर्तमान समय में पल्लवित व पुष्पित रूप में हमारे सामने है। हिन्दी दलित कथा साहित्य में उपन्यास विधा पर यह एक नया अध्याय अपनी पहचान के साथ जुड़ा है।

दलितों को केन्द्रीय विषय बनाकर लेखक 20वीं सदी के प्रारम्भ से ही लिखने लगा था लेकिन स्वयं दलितों द्वारा दलितों पर किया गया लेखन अलग ही अनुभूतिपरक संवेदनाओं का परिणाम है।

'छप्पर' में सुक्खा हिन्दू धर्म की वर्ण–व्यवस्था पर आधारित संस्कृति के प्रति विद्रोह करके भाग्यवाद और अन्धविश्वास की परम्पराओं को नकार देता है। वह

वास्तविक लोक में तथा तर्क–वितर्क के माध्यम से वैज्ञानिक चिन्तन में विश्वास करते हैं।

वेश्याओं के प्रति पुरुषों की मानसिकता, मिल मालिकों द्वारा दलित स्त्रियों के साथ बलात्कार करना, जमींदारों द्वारा शोषण आदि के माध्यम से पुरुष की घटिया सोच व वर्चस्ववादी समाज द्वारा निचले तबके का शोषण के माध्यम से उनका कमजोर मानसिक विकास इत्यादि मानसिकताओं को समाज के सामने रखकर कुछ सुधार की आकांक्षा की है।

वर्तमान परिवर्तन की गति ने समाज की आधारभूत संस्थाओं में मूलभूत परिवर्तन किये हैं। विवाह, परिवार तथा जाति की परम्परागत धारणाओं में बदलाव आया है और आज का शिक्षित व्यक्ति उन सभी रूढ़ियों को नकार रहा है जो उसके विकास में बाधक है। आज समाज के पुराने मूल्य टूट रहे हैं और नये मूल्यों के प्रति निष्ठा बढ़ने लगी है। आज दलितों में जो परिवर्तन देखने को मिल रहा है वह सब शिक्षा, राजनीतिक, जागरूकता, अधिकार बोध, वैज्ञानिकता का प्रभाव है। 'दलित' शब्द के अर्थ पर विवाद व सौन्दर्यशास्त्र पर विवाद जैसी चर्चायें अब पुरानी पड़ गई है। धीरे–धीरे विरोधी स्वर समाप्त हो गये हैं और अब हिन्दी में दलित साहित्य स्थापित हो गया है।

दलित साहित्य की परिभाषा के सम्बन्ध में भी विचारक एक नहीं है। दलित साहित्य की सर्वमान्य परिभाषा है—"दलितों का दलितों द्वारा दलित समस्याओं पर लिखित साहित्य ही दलित साहित्य है। अगर दलित लेखक है, विषय इतर है तो वह दलित साहित्यकार नहीं कहला सकता है।" बहरहाल, यह बहस का विषय है।

दलित समाज के सामने अनेक समस्याएँ हैं, जिनमें जातिगत समस्या, नारी व दलितों के प्रति अभद्रता व शोषण, दहेज की समस्या, अस्पृश्यता मुख्य है। वैसे तो सभी समस्याओं के समाधान के तौर पर वर्षों पहले कई कानून बन चुके हैं लेकिन व्यक्ति कानून का पालन दबाव से करता है। अत: समाधान नहीं हो पा रहा है अत: व्यक्ति को सर्वप्रथम अपनी सोच को बदलना होगा। दहेज-प्रथा से मुक्ति के लिए अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा देना होगा। न दहेज लेंगे, न दहेज देंगे, जैसे नारों को गुंजायमान करना होगा। जातिभेद को समाप्त करने के लिए समानता की भावना को प्रबल करना होगा तथा दलितों व सवर्णों के सम्बन्ध में पूर्वाग्रहों से ग्रसित तथ्यों को भुलाना होगा क्योंकि इन सभी समस्याओं ने व्यक्ति के सामाजिक जीवन को विखण्डित कर दिया है।

साहित्य चाहे दलित हो या गैरदलित, वह समाज के परिवर्तनशील रूप को ही चित्रित करता है। प्रत्येक युग व प्रत्येक समाज की अपनी विचारधारा व मान्यताएँ होती हैं और यही मान्यताएँ समाज में नये युग व नये समाज का निर्माण करती है। सभी दलित उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास साहित्य में समाज के बदलते रूप व तत्कालीन समाज की विवशता भरी जिन्दगी, शोषित, संघर्षशील व निराशाजनक स्थिति को गहराई व व्यापकता से चित्रित किया। उन्होंने दलित समाज के सामाजिक सरोकारों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हुए अभी तक जीवित समस्याओं के प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। साथ ही उन परिस्थितियों व विश्वासों पर भी प्रहार किया है जो समाज के विकास में बाधक है। दलित साहित्य में अभी नई सम्भावनाएँ हैं।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज में परिवर्तन हुआ है। प्रेम–विवाह, जातिगत भावनाओं आदि पुरानी मान्यताओं व परम्पराओं में बदलाव आये हैं। साथ ही सामाजिक रूढ़ियों व अन्धविश्वासों से लोगों का ध्यान हटा है। आज जाति टूट रही है, नारी की सामाजिक स्थिति में मूलभूत परिवर्तन आया है। वह आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होकर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है लेकिन कहीं–न–कहीं पुरुष को स्त्री का आगे आना खटकता है और यह उसके पूर्वाग्रहों से ग्रसित विचारों का परिणाम है। इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव दलित कथा–साहित्य के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है। साहित्य साहित्य ही होता है और हित की साधना उसका ध्येय है। स्वातन्त्रयोतर काल में दलित साहित्य की बाढ़ सी आ गयी है, अतः अब कोई खेद प्रस्ताव पारित नहीं करेंगे कि इस अवधि में दलित साहित्य का अभाव रहा। यह कहने की परम्परा तोड़ दी गई कि हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का अभाव है, वह नगण्य है, वह एक प्रवृत्ति है, वह एक अभिव्यक्ति प्रणाली है या वह एक शैली है, उपविधा है। आज 21वीं सदी में हिन्दी साहित्य में दलित विधा एक आधुनिक, सशक्त, स्वायतपूर्ण विधा है।

दलित साहित्य आम आदमी को महानता एवं महत्ता प्रदान करता है। इसके केन्द्र में वह शोषित मनुष्य हैं जिसे वर्णव्यवस्था ने अमंगल, अपवित्र, पूर्वजन्म का अपराधी कहकर निंदा की शा कारों ने जिससे शत्रुता बरती, यही उपेक्षित व्यक्ति जहाँ नायक, उपनायक बनता है। दलित साहित्य की राष्ट्रीयता बहुत व्यापक है, यह सिर्फ मनुष्य को सर्वोपरि मानता है। इसमें भाषाई, प्रान्तीय, राष्ट्रीय, दुराभिमान नहीं है।

मनुष्य की आजादी के लिए लड़ने वाला व्यक्ति हमारा अपना है चाहे वह अभारतीय ही क्यों न हो।

दलित साहित्य ने हिन्दी के समान्तर और बाद में जनवादी साहित्य की परम्परा को आगे बढ़ाया है पीड़ित, शोषित, दलित समाज की मौन व्यथा को मुखरित करने के लिए ही दलित साहित्य का सृजन हो रहा है। यह हर्ष का विषय है कि दलित साहित्य अपनी विद्रोहात्मक भूमिका के साथ मराठी साहित्य क्षेत्र में उदित हो गया। अपने आवेग एवं प्रवेग के साथ पथानुगमन करते हुए दलित साहित्य का आन्दोलन प्राथमिक दौर की उच्छृंखलता त्याग कर शनैः-शनैः प्रौढ़त्व की ओर अग्रसर हो रहा है।

दलित कवि, साहित्यकारों ने इसी परिवेश और वातावरण ने अपनी आँखें खोली, सांस ली और जीने की कोशिश करते रहे। अब तक मराठी साहित्य की भाषा घर की उस गृहणी की तरह थी जिसको सुवर्णाभूषणों से अलंकृत कर सुन्दरतम परिधानों से सजाकर घर की चारदीवारी में कैद कर लिया गया था। उसके सौन्दर्य पर अभिभूत होकर, मुग्ध होकर, उसका भोग किया जा रहा था।

दलित साहित्य 21वीं सदी का भारतीय साहित्य है। इसका केन्द्रबिन्दु आम आदमी है। सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य हेतु यह एक हथियार है। वर्ण एवं ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रति इसका आक्रोश है। यह सड़ी-गली, जड़-रूढ़ हो चुकी बासी, लिजलिजी मान्यताओं, परम्पराओं पर प्रहार करता है। काल्पनिक, अतार्किक, अवैज्ञानिक, विचारों मान्यताओं से असहमति व्यक्त करता है। समता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व एवं न्याय दलित साहित्य का प्रमुख मूल्य है। इसलिए यह सर्वजन का साहित्य है।

डॉ. अम्बेडकर ने इस विराट और व्यपाक समाज की खामोशी को अपनी पत्रकारिता के माध्यम से आवाज दी और उन्होंने कई पत्र निकाले और उनके लिए लिखा। उनका विराट चिन्तन को मराठी दलित साहित्य खूब प्रयोग किया। दलित साहित्य की ऊर्जा में डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन और दर्शन का ही प्रभाव बाद में दलित साहित्य में उत्तरोत्तर दिखाई देता है। इस प्रकार दलित चेतना का बीज 70 और 80 के दशक में मराठी दलित साहित्य के रूप में सर्वप्रथम प्रस्फुटित होकर सम्पूर्ण भारतीय समाज में व्यापक रूप से फैलता ही चला गया। दलित चेतना और अस्मिता बोध के कारण स्थापित रूढ़ियों, संस्कारों और साहित्य आदि का प्रतिकार स्पष्ट रूप से सामने आता है। आज दलित विषय और दलित जीवन को अनके पत्र ओर पत्रिकाएँ अपने प्रकाशन का विषय बनाने लग रहे हैं। और इसी सन्दर्भ में अनेक पत्र और पत्रिकाओं ने दलित विषयक सामग्री पर विशेषांक आदि निकाले हैं और दलित चेतना की वजह से आज हरेक पत्रों में दलित सरोकारों को स्थान मिलने लगा है।

दलित साहित्य का वह एक दौर था कि जब वह अपने अस्तित्व के लिए, पहचान बनाने के लिए जूझ रहा था किन्तु सवर्णों के आगे वह विफल होता रहा। कुछ सवर्ण जो मार्क्स, तथा लेनिन की विचारधाराओं से प्रभावित थे, दलित वर्ग की व्यथा को साहित्यिक रूप प्रदान कर रहे थे। किन्तु दलित वर्ग में उस समय उतना सामर्थ्य नहीं था कि वह खुद अपनी वकालत कर सके। धीरे-धीरे समय बदलता गया, उस वर्ग में भी शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ और उसने अपनी बात कहने का साहस आ गया।

भारतीय समाज में दलित साहित्य की स्थिति पहले जैसी नहीं रहीं। आधुनिक भारतीय समाज में धीरे-धीरे परिवर्तनों के चलते दलित वर्ग की स्थिति सुदृढ़ होती गई

जिसमें हमारी सरकार का बहुत बड़ा योगदान रहा है। आज इस वर्ग की स्थिति में काफी सुधार आ गया है। समाज में इसे यदि सम्मान नहीं मिलता तो अब अपमान भी बहुत कम होता है।

हजारों वर्षों से हमारी समाज व्यवस्था में नारी, कृषक एवं दलित ही पीड़ित रहे हैं। अनंत यातनाओं की दुःखों की अन्तहीन त्रिवेणी आज भी प्रवाहित है। दुःखों की एक लम्बी-शृंखला है। हजारों वर्षों से एक समाज ने जो दुःख भोगा, जो सहा, जिन परिस्थितियों से वे गुजरे उसकी प्रतिक्रिया, अभिव्यक्ति, उस व्यवस्था के प्रति विद्रोह, नकार और संघर्ष करते अपने स्वत्व अधिकार को प्राप्त करने के लिए तीव्र स्वर दलित साहित्य है। दलित साहित्य वंचितों की चेतना का स्वर है, संगठित होकर उसके साथ संघर्ष कर अपनी स्थित में सुधार करने का स्वर है। घृणा, अन्याय, अत्याचार करने की जो सदियों से मानसिकता रही है, उसके साथ लडाई करने, जूझने और अपने हक की सुविधा, व्यवस्था प्रदान करने का आवाहन है। अत्याचार सहते वर्ग की आँखें खोलने का पूरा-पूरा प्रयास दलित साहित्य ने किया है।

इस शोध कार्य के प्रथम अध्याय में हिन्दी दलित चेतना की चिन्तगनत पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए अनेक बिन्दुओं पर चर्चा की गई है। दलित चेतना की व्युत्पत्ति, अर्थ, स्वरूप, परिभाषा आदि को विश्लेषित किया गया है।

द्वितीय अध्याय के माध्यम से दलित चेतना की प्रवृत्तियों के बारे में जाना गया है, दलित साहित्य की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक प्रवृत्तियों को अवर्णनीय आयाम दिए है।

तृतीय अध्याय के जरिए दलित चेतना की वर्णव्यवस्था, अन्धविश्वास, मार्क्सवाद, अम्बेडकर व उनके जीवन मूल्यों का बखान किया है।

चतुर्थ अध्याय में दलित चेतना के कथ्य और शिल्प के स्वरूप का विवेचन किया गया है। इसमें भाषा, शैली, प्रतीक, मिथक, रूपक इसका साहित्यिक महत्त्वपूर्ण तत्व है।

पंचम अध्याय में हिन्दी कथा–साहित्य में दलित नारी की स्थिति और स्वरूप का वर्णन हुआ है कि आज नारी की समाज में क्या स्थिति है, नारी का कितना अधिकार हैं समाज में।

षष्ठ अध्याय के माध्यम से दलित विविध साहित्यकारों का व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषण किया गया है। जिसके अन्तर्गत जाने–माने प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं, जिन्होंने इस दलित विधा को अवर्णनीय आयाम दिए हैं।

इस प्रकार से इस शोध कार्य को पूर्ण करते हुए मेरी योग्यतानुसार यह छोटी सी कोशिश है। इस शोध के अन्तर्गत 21वीं सदी के प्रथम दशक की ज्यादा से ज्यादा रचनाओं की और समाज में तमाम समस्याओं की और दलितों की शिक्षा, अधिकार आदि की चर्चा की कोशिश मैंने की है। कुछ अनछुआ न रह जाए इसकी दक्षता भी ली है। ज्यादातर रचनाओं का विवेचन विश्लेषण हुआ है। शोध–प्रबंध की मर्यादा हेतु सभी रचनाओं को समाहित करना असम्भव ही था, फिर भी जितना अधिक लेना था, लेने का प्रयास किया। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा–साहित्य में दलित चेतना के बदलते स्वरूप को पाठक ज्यादा से ज्यादा अच्छे तरीके से जान सके इसकी यह छोटी सी पहल है।

'चेतना' का अर्थ जागृति। परिवर्तन, बदलाव का कारण चेतना है। अपने अस्तित्व अहम की रक्षा करना चेतना का लक्ष्य रहा है। डॉ. अम्बेडकर जी से प्रेरणा प्राप्त करके, संगठित बनकर विकास कर रहा है। उनके विचारों से दलित समाज

चेतित जागृत हो चुका हैं। दलित साहित्य की यह सबसे बड़ी माँग है जितना ही इसका साहित्य समृद्ध होगा उतना ही लोगों तक आसानी से पहुँचेगा, उसकी चेतना का विकास होगा, समृद्धता में बढोतरी होगी, समस्याओं का निराकरण होगा, जिससे दलित साहित्य की उपयोगिता व सार्थकता सिद्ध हो सकेगी। आज का पढ़ा-लिखा दलित नागरी जीवन में रहने वाला दलित, युवा इसके प्रमाण है। राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में दलित आगे बढ़ रहा है। 1990-2012 के दशक में दलित शोषित कम, चेतित अधिक है। इसी कारण शोषण, अत्याचार, अन्याय, दमन जेसी समस्याएँ कम हो रही है। समता, समाजवाद के लिए चेतना का होना अनिवार्य है और यह कार्य 21वीं सदी के साहित्यकार कर रहा है, जो दलित साहित्य से बेखौफ है।

वर्तमान में हमारे देश में वैचारिकता की बाढ़ सी आ गई है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का हजारों की संख्या में प्रकाशित होना यानी वैचारिक क्रान्ति। वैचारिकता का आकाश विस्तृत हुआ। कल्पना की मनोरमता, रंजकता और स्वप्निल खुशानुभूति पूर्णतः समाप्त हो गई। यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर व्यक्ति अपनी क्षमता, योग्यता, कर्त्तव्य को तोलने, मापने, जाँचने और परखने लगा।

जन चेतना जगाने वाली पट्नाट्यों का आयोजन इसमें विशेष उल्लेखनीय है क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य, विशेष रूप में आत्मकथ्य, आत्मनिवेदन, आत्मकथा और यथार्थ से भिड़ती, टक्कर देती महिलाओं के उदाहरण प्रस्तुत कर जन चेतना की वृद्धि का कार्य इक्कीसवीं शती के प्रथम दशक की उपलब्धि है।

इस प्रकार आज के दौर में हिन्दी साहित्य अपनी विकासात्मक सीढ़ी पर चढ़ रहा है। अब दलित वर्ग न पिछड़ा रहा न 'दब्बू' रहा न नारी 'भग्गू' रही। दोनों ही

अपनी–अपनी जमीन पर पक्के, पांव जमा कर खड़े हो गए और ललकारने लगे। अब दलितों को भी समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान मिलना शुरू हो गया है। 'पाने' की दौड़ में वह शामिल हो गया, प्रतिस्पर्धी बन गया। चर्चा में और चर्चासत्रों में, सम्मेलनों में उनको शामिल किया जाने लगा है और उनकी स्थिति पर गौर किया जाने लगा है।

❑

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ

1. अमृतलाल नागर — *नाच्यौ बहुत गोपाल* (उपन्यास) प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण, 1995
2. असगर वजाहत — *सात आसमान* (उपन्यास) राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाषमार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-2 पहला संस्करण, 1996
3. एन. सिंह — *दलित साहित्य चिन्तन के विविध आयाम*, आम प्रकाशन, 210/96, भवानी कृपा, सेक्टर-2, चारकोप कांदिवली (पं.) बम्बई।
4. एन. सिंह (सं.) — *शिखर की ओर* (श्री माताप्रसाद अभिनन्दन ग्रंथ) प्रकाशक-कर्मवीर भारतीय, शेखपुरा।
5. एन.आर.सागर — *आजाद हैं हम* (कविता संग्रह), संगीता प्रकाशन, विश्वास नगर, 30/64 गली नं. 8, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम सं. 1995
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि — *घुसपैठिए*, प्र.सं., 2003
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि — *जूठन*
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि — *सलाम*, प्र.सं., 2000
9. कंचनलता सब्बरवाल — *समाजशास्त्र*

10. कमला सिंघवी — *नारी अन्तर्पण और समाज का सन्दर्भ*

11. कौसल्या बैसन्नी — *दोहरा अभिशाप*, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं., 2012

12. गायत्री माहेश्वरी — *समकालीन कविता में स्त्री*

13. गिरिराज शरण, सूर्यबाला — *नारी उत्पीड़न की कहानियाँ*

14. जयप्रकाश कर्दम — *गूँगा नहीं था मैं*

15. जयप्रकाश कर्दम — *छप्पर*, राहुल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं., 2012

16. डॉ. आनंद वास्कर — *हिन्दी साहित्य में दलित चेतना*

17. डॉ. एस. पी. सुमनाक्षर — *सिन्धु घाटी बोल उठी*

18. डॉ. ओमप्रकाश — *दलित साहित्स एक सशक्त क्रान्ति*

19. डॉ. कालीचरण स्नेही — *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*

20. डॉ. कुसुम वियोगी (सं.) — *चार इंच की कलम (कहानी संग्रह)*

21. डॉ. चमनलाल — *दलित साहित्य एक मूल्यांकन*

22. डॉ. जीतूभाई मकवाणा — *समकालीन हिन्दी दलित साहित्य : एक अध्ययन*

23. डॉ. दयानन्द बटोही — *सुरंग*, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, प्र.सं., 2008

24. डॉ. नगेन्द्र —*हिन्दी साहित्य का इतिहास, आदिकाल*

25. डॉ. पुरुषोत्तम सत्य प्रेमी — *हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा*

26. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी (सं.) — *दलित साहित्य रचना और विचार*

27. डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र — *वैरागिन*

28. डॉ. श्यौराजसिंह बेचैन — *स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका,* साहित्य संस्थान, उत्तरांचल कालोनी, 4 लोनी गालियाबाद।

29. डॉ. संजय नवले — *हिन्दी दलित आत्मकथा*

30. डॉ. सुशीला ढाकभौरे — *सिलिया*

31. निरुपमा सेवती — *भीड़ में गुम*

32. पुष्पपाल सिंह सं. — *महिला कथाकार : प्रतिनिधि कहानियाँ*

33. प्रभा खेतान — *स्त्री विमर्श के अन्तर्विरोध*

34. मधुकर सिंह — *बाजत अनहद ढोल*, प्र.सं., 2005

35. महादेवी वर्मा — *मेरे प्रिय निबन्ध*

36. माताप्रसाद — *झोंपड़ी से राजभवन तक*

37. माताप्रसाद — *दलित साहित्य की प्रमुख विधाएँ*

38. मुक्तिबोध — *एक साहित्य की डायरी*

39. मेहरुन्निसा परवेज — *एक प्लेट सैलाब*

40. मोहनदास नैमिशराय — *अपने-अपने पिंजरे (भाग1 व भाग 2)*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 1995

41. मोहनदास नैमिशराय — *आज बाजार बन्द है*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2004

42. मोहनदास नैमिशराय — *जख्म हमारे*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2011

43. मोहनदास नैमिशराय — *मुक्तिपर्व*, प्रथम संस्करण, 2004

44. रजत रानी 'मीनू' — *नवें दशक की हिन्दी दलित कविता*

45. राकेश कुमार सिंह — *पठार का कोहरा*, प्र.सं., 2003

46. रूपनारायण सोनकर — *सुअरदार,* सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2010

47. रेणु गुप्ता — *हिन्दी कथा-लेखिकाओं की कहानियों में नारी*

48. लक्ष्मण गायकवाड़ — *पत्थर कटवा*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2006

49. *विवेकानन्द साहित्य*

50. शरण कुमार लिंबाले — *दलित ब्राह्मण*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2006

51. शरण कुमार लिंबाले — *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र*

52. शरण कुमार लिंबाले — *नरवानर*, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2004

53. शरणकुमार लिंबाले — *अवकरमाशी*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2009

54. शरणकुमार लिंबाले — *छुआछूत*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2008

55. शरणकुमार लिंबाले — *हिन्दू*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2004

56. शरद सिंह — *पिछले पन्ने की औरतें*, प्र.सं., 2005

57. शेखर — *मेरे कुनबे के लोग*

58. श्यौराजसिंह बेचैन — *मेरा बचपन मेरे कंधों पर*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2009

59. सत्य प्रकाश — *जस तस भई सवेर*, सागर प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2012

60. सीमोन द बोउवार — *स्त्री उपेक्षिता*

61. सुभाषचन्द कुशवाह — *जातिदंश की कहानियाँ*, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2009

62. सूरजपाल चौहान — *नया ब्राह्मण*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2009

63. सूरजपाल चौहान — *संतप्त*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं., 2006

64. सूरजपाल चौहान — *सलाम (कहानी संग्रह)*

पत्रिकाएँ

1. *अंगुत्तर (त्रैमासिक)*, संपादक - डॉ. विमल कीर्ति, 21 सुभाष नगर हिंगणा रोड, नागपुर (महाराष्ट्र) अंक ज./फर./मार्च, 1995

2. *अन्यथा*, सम्पादक : कृष्ण किशोर, भारतीय/अमरीकी मित्रों का साहित्यिक प्रयास, जून, 2008 दलित अश्वेत महिलाओं की संघर्ष कथा, 2035 फेज-1 अरबन एस्टेट डुगरी, लुधियाना-141013

3. *अपेक्षा*, सम्पादक : डॉ. तेजसिंह, अम्बेडकर कहानी विशेषांक, अप्रैल-जून, 2007, जनवरी-मार्च, 2008, दलित स्त्री चिन्तन पर केन्द्रित, 27 धौड़ली, कृष्णानगर, दिल्ली-51

4. *अभिमूकनायक (मासिक)*, सम्पादक : डी. एल. भारती, शालीमार बाग, दिल्ली, अंक जुलाई/अगस्त 1998 (स्वर्ण जयन्ती विशेषांक) मार्च, 1999

5. *आजकल (मासिक)*, सम्पादक : प्रतापसिंह बिष्ट, पटियाला हाऊस, दिल्ली, अंक मई/जून, 1995

6. *कल के लिए (दलित साहित्य विशेषांक) (मासिक)*, सम्पादक : डॉ. जयनारायण, प्लानिंग कॉलोनी, बहराइच (उ.प्र.) अंक–दिसम्बर, 1998

7. *दलित कलम एवं चेतना सम्मेलन (स्मारिका)*, सम्पादक : श्रीराम दवे, भोपाल, अंक अक्टूबर, 1998

8. *दलित लिबरेशन टूडे (द्विमासिक)*, सम्पादक : वेदकुमार, 18/455, इन्दिरा नगर, लखनऊ, (उ.प्र.), अंक दिसम्बर/जनवरी, 1998, नवम्बर, 1998

9. *दूसरा शनिवार*, सम्पादक : राजकिशोर, सी–53, एक्सप्रेस अपार्टमेन्ट्स, दिल्ली (पाक्षिक) अंक 12 अप्रैल, 1997

10. *देशकाल (मासिक)*, सम्पादक मंडल : मदन, संजय, राधेश्याम, मंगोलपुरी, दिल्ली, 492302 ए विदिशा अपार्टमेंटस, पटपड़गंज, अंक, जून, 1996

11. *नया पथ*, प्रधान सम्पादक : शिवकुमार मिश्र, एम.आई.जी., 99 सरस्वती नगर, भोपाल–3, अंक 26 जनवरी, 1998

12. *पश्यन्ती (त्रैमासिक) (दलित चेतना पर केन्द्रित विशेषांक*, सम्पादक : रामशरण जोशी, 3/3 आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली, अंक – अप्रैल/जून, 1998

13. *पूर्व देवा*, सम्पादक : डॉ. हरिमोहन धावन, उज्जैन (म.प्र.) अंक – अक्टूबर/दिसम्बर, 1994, अंक – जुलाई–सितम्बर, 1996

14. *प्रज्ञा साहित्य (दलित साहित्य विशेषांक)*, सम्पादक : डॉ. रामकृष्ण राजपूत, अतिथि सम्पादक : ओमप्रकाश वाल्मीकि, अंक मार्च/जून, 1995, पल्ला–गल्ला मंडी

15. *बहुरि नाहिं आवना*, प्रधान सम्पादक : डॉ. श्यौराजसिंह, सम्पादक डॉ. दिनेश राम, केदार प्रसाद मीणा, एफ 345, बैंक वाली गली, लाडो सराय, नई दिल्ली।

16. *युद्धरत आम आदमी*, सम्पादक : रमणिका गुप्ता, अंक - 31 जुलाई/सितम्बर, 1995, अंक 32-33, अक्टूबर मार्च 1996, अंक 34-35 अप्रैल/सितम्बर, 1996 (दलित चेतना साहित्य विशेषांक), मेन रोड, हजारीबाग, बिहार।

17. *वर्तमान साहित्य (मासिक)*, सम्पादक : विभूति नारायण राय, प्रथम तल 1-2, मुमुंद नगर, हापुड़ रोड, गालियाबाद, (उ.प्र.) अंक जनवरी, 1998, अंक जून, 1999

18. *शंबूक (मासिक)*, सम्पादक : रवीन्द्र प्रसाद, लड्डू-आर्य, कुमार रोड, पटना-4, अंक सितम्बर-दिसम्बर, 1994

19. *संचेतना (त्रैमासिक)*, सम्पादक : महीप सिंह, एच-108, शिवाजी पार्क (पंजाबी बाग), नई दिल्ली, अंक मार्च, 1982

20. *समग्र प्रहरी (मासिक)*, सम्पादक : राम खोब्रागड़े, 6229, तीसरी मंजिल, ब्लॉक नं. 6 गली नं. 1, देवनगर, करोल बाग, नई दिल्ली, अंक-फरवरी, 1996

21. *सुमनलिपि*, सम्पादक : जीतसिंह चौहान, अतिथि : डॉ. एन. सिंह, 210/46 ए, भवानी कृपा, सेक्टर-2, चारकोप कांदिवली (पश्चिम) मुम्बई, अंक - नवम्बर, 1995 (दलित साहित्य अंक)

22. *हँस (दलित अंक) सत्ता विमर्श और दलित*, अगस्त, 2004, दरियागंज, नई दिल्ली।

23. *हँस (मासिक)*, सम्पादक : राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली, अक्टूबर, 1992, अंक मई, 1996, अंक अगस्त, 1996, अंक - सितम्बर, 1995, अंक सितम्बर, 1996, अंक फरवरी, 1998, अंक मार्च, 1999, अंक मई 1999

समाचार पत्र

1. अमर उजाला, 26.2.1996, 4.10. 1998 (मुरादाबाद)
2. टाइम्स आफ इण्डिया (अंग्रेजी) दैनिक, मुम्बई
3. नवभारत टाइम्स, हिन्दी दैनिक, मुम्बई
4. इण्डिया टुडे, मासिक (हिन्दी) मुम्बई
5. समकालीन जनमत
6. जनसत्ता, दिल्ली 22.11.1987
7. दैनिक भास्कर, रविवारीय, इन्दौर रसरंग (31.1.1999, 7.2.1999)

शब्दकोश

1. मानक हिन्दी कोश — सम्पादक : रामचन्द्र वर्मा, पांचवाँ खण्ड
2. मराठी हिन्दी शब्दकोश — गो. प. नेने
3. हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश — डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल प्रकाशन, 2009
4. हिन्दी साहित्य कोष — धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल, वाराणसी
5. आदर्श हिन्दी शब्दकोश — डॉ. रामविलास गुप्त, कमल प्रकाशन
6. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका
7. दि रेमंड हाउस डिक्शनरी, जेम्स टेइन, न्यूयार्क
8. भारतीय साहित्य कोश – सम्पादक : डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

❑